॥ एकांकी ॥

भूमिका

श्रव्य (पाठ्य) काव्य एवं दृश्य काव्य, साहित्य के ये दो रूप माने जाते हैं। श्रव्य काव्य का पूरा आनन्द सुनकर अथवा पढ़कर लिया जाता है, पर दृश्य काव्य का पूरा आनन्द अभिनय द्वारा ही सम्भव है।

श्रव्य (पाठ्य) काव्य

आज से बहुत पहले जब सिनेमा, टी0 वी0 का प्रचलन नहीं था, मनुष्य साहित्य के द्वारा मन-बहलाव करता था। वह उपन्यास, कहानी पढ़ता था। इससे उसका मनोरञ्जन और ज्ञानवर्द्धन होता था, लेकिन आज मनुष्य के पास इतना समय कहाँ? 20वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध तो दृश्य-श्रव्य माध्यमों के अभूतपूर्व विकास का साक्षी रहा है। इससे न केवल सूचना और ज्ञान के क्षेत्र का अद्‌भुत विस्तार हुआ है, बल्कि इसने साहित्य और दूसरी कला-विधाओं को काफी हद तक अपने दबाव में लिया है। ऐसी स्थिति में साहित्य-सेवियों ने छोटे-छोटे प्रगीतों, कहानियों, लघु कथाओं और कम समय में अभिनीत होनेवाले नाटकों की आवश्यकता समझी। आधुनिक मानव भी समयाभाव के कारण चलते-फिरते अपनी थकान भुलाने के लिए, मन बहलाने के लिए छोटा-से-छोटा मनोरञ्जक साहित्य पढ़ना चाहता है। एकांकी नाटकों का उद्‌भव भी इसी कारण समझा जाता है।

दृश्य काव्य

समय के बदलते चक्र में मानव की रुचियों में भी परिवर्तन हुआ जिसके परिणामस्वरूप नाट्य-विधा का प्रादुर्भाव हुआ। नाटक एक दृश्य विधा है और चलचित्रों के पहले तो यह एकमात्र दृश्य काव्य विधा थी। मनुष्य के पास पहले काफी समय रहता था, जिस कारण नाट्य-विधा श्रव्य काव्य ही बनी रही, लेकिन जैसे-जैसे उसके पास समयाभाव होता गया, वैसे-वैसे इसके स्वरूप में भी परिवर्तन होता गया। यही कारण है कि आज नाटक देखा और सुना जाता है। दृश्य काव्य के अन्तर्गत नाटक के कई भेद किये गये हैं, जिन्हें रूपक और उपरूपक की संज्ञा प्रदान की जाती है। चूँकि एकांकी भी नाटक का ही एक प्रकार है, इसलिए इसे भी दृश्य काव्य ही कहा जायगा।

एकांकी का स्वरूप

एक अंकवाली संक्षिप्त नाट्यकृति को 'एकांकी' कहा जाता है, जिसमें जीवन की किसी एक घटना का चित्रण होता है। किसी जीवन्त परिस्थिति को पात्रों और घटना के माध्यम से कौतूहलपूर्ण ढंग से उपस्थित करना ही एकांकी का मुख्य लक्ष्य होता है। इसमें जीवन का आंशिक रूप ही प्रस्तुत किया जाता है। एकांकी लघुकाय होते हुए भी अपने-आप में स्वतन्त्र और पूर्ण होता है। इसके लिए एक मार्मिक घटना, एक भाव, एक चरित्र, एक विचार अथवा जीवन का एक पक्ष ही पर्याप्त है। इस संक्षिप्त नाट्यवस्तु को एकांकी इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि उसमें प्रभावान्विति की सृष्टि होती है तथा एकांकी के सभी तत्त्व इस प्रकार समायोजित होते हैं कि उनका प्रभाव किसी एक बिन्दु पर जाकर केन्द्रित हो जाता है। एक विशेष सीमा तक पाठक अपनी कल्पना के सहारे दृश्यों के मानसिक चित्र में रमते हुए 'एकांकी' का आस्वादन करने में समर्थ रहता है।

यदि एकांकी को विशेष नाट्य-भेद माना जाय तो प्राचीन संस्कृत साहित्य के अनेक पुराने भेद एकांकी कहे जा सकते हैं, लेकिन वास्तविकता यह है कि आज का एकांकी अंग्रेजी के 'वन ऐक्ट प्ले' पर आधारित है। उसकी रचना-पद्धति पर यूरोपीय नाट्य-कला का अत्यधिक प्रभाव है, अतः एकांकी उसी प्रकार एक अंकवाले रूपक अथवा उपरूपक की अपेक्षा 'वन ऐक्ट प्ले' के अधिक सन्निकट है, जिस प्रकार आज की कहानी प्राचीन संस्कृत कथा से अधिक यूरोप की 'शार्ट स्टोरी' के निकट है।

एकांकी का जो आधुनिकतम स्वरूप आज हमारे सामने है उसका जन्म 19वीं शताब्दी के अन्त में ही हो चुका था। भारतीय संस्कृत नाट्यशास्त्र से प्रभावित इस युग के भक्तिपरक, पौराणिक, ऐतिहासिक, राष्ट्रीय एवं सामाजिक एकांकी प्रयोग की दृष्टि से अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं; क्योंकि इन्हीं के द्वारा भावी एकांकी के विकास की व्यापक पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ है। आज के एकांकियों के स्वरूप पर दृष्टिपात करें तो उसमें प्रायः युग की नयी कुण्ठाओं, वर्जनाओं और विडम्बनाओं की अभिव्यक्ति के प्रति विशेष आग्रह दिखायी पड़ता है।

एकांकी और नाटक में अन्तर

उपन्यास और कहानी की भाँति नाटक और एकांकी केवल परिमाण की लघुता या विस्तार के कारण ही नहीं, बल्कि अन्य अनेक कारणों से भी भिन्नता रखते हैं। मुख्य रूप से इनमें दो प्रकार के अन्तर हैं—

आन्तरिक अन्तर—मुख्य रूप से एकांकी दृश्य काव्य है, पर आज के व्यस्त युग में अन्य साहित्यिक विधाओं की भाँति एकांकी दृश्य ही नहीं, पाठ्य भी होते हैं जिनका रस पढ़कर भी प्राप्त किया जा सकता है। एकांकी में पूरा आनन्द तभी प्राप्त होता है जब उसे रंगमंच पर अभिनीत होते हुए देखा जाय। पाठक उसका अभिनेता होता है और दर्शक भी। एकांकी के पाठक को अपनी कल्पना से घटनास्थल को साकार करना पड़ता है अर्थात् वह अपने मस्तिष्क में रंगमंच की कल्पना कर लेता है।

एकांकी जीवन की एक ही मूल संवेदना की ऐसी झलक प्रस्तुत करता है, जिनमें एक अंक के कुछ दृश्यों, कुछ पात्रों और कुछ घटनाओं के माध्यम से उनके विराट् और व्यापक रूप की 'झाँकी' मिल जाय। संवेदना से तात्पर्य उस मर्म-बिन्दु से है, जिसे उद्घाटित करना लेखक को अभीष्ट होता है। एक ही विशिष्ट संवेदना का सजीव और प्रभावशाली चित्र प्रस्तुत करना ही एकांकीकार का उद्देश्य है जिसके लिए वह कथावस्तु, चरित्र एवं संवाद आदि की रोचक, मार्मिक और चुटीली योजना करता है।

यद्यपि नाटक और एकांकी दोनों ही दृश्य काव्य के भेद हैं, दोनों में कथावस्तु, पात्र और संवाद आदि की योजना होती है, दोनों में अभिनय तत्त्व का पूरा निर्वाह अपेक्षित है, फिर भी दोनों में कुछ आन्तरिक भेद उपस्थित रहते हैं।

बहिरंग अन्तर—नाटक और एकांकी में भिन्नता के सम्बन्ध में हम देखते हैं कि उपन्यास और नाटक में एक साथ अनेक सन्देशों, प्रभावों और समस्याओं का निर्वाह सम्भव है, लेकिन एकांकी में केवल एक ही विशिष्ट सन्देश, प्रभाव और समस्या की झलक दिखायी देती है। इस मौलिक अन्तर को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि मात्र एक छोटा नाटक एकांकी नहीं हो सकता, जिस प्रकार एक बड़े एकांकी को नाटक कहना समीचीन नहीं है।

एकांकी में संक्षिप्त और एक ही कथावस्तु होती है, प्रासंगिक कथावस्तु के लिए उसमें कोई स्थान नहीं है, जबकि नाटक में लम्बी कथावस्तु होती है, जिसमें आधिकारिक और प्रासंगिक कथावस्तु साथ-साथ चलती है। नाटकों की अर्थ-प्रकृतियों, कार्यावस्थाओं और सन्धियों की योजना के लिए भी एकांकी में कोई स्थान नहीं है।

एकांकी में एक अंक होता है, पर नाटक में पाँच से दस अंक तक होते हैं। एकांकी में पात्रों की संख्या सीमित होती है, पर नाटक में अनेक पात्र होते हैं, जो प्रमुख पात्र के चरित्र-विकास में सहायक होते हैं।

आकार और उद्देश्य में कहानी के बहुत निकट होते हुए भी एकांकी की यह भिन्नता स्पष्ट है कि कहानीकार को घटना, पात्र, वातावरण और समस्याओं के सम्बन्ध में अपनी ओर से कहने का पर्याप्त अवसर रहता है, लेकिन एकांकीकार को ये सुविधाएँ प्राप्त नहीं हैं। उसे केवल संवादों के सहारे घटना-चक्र, चरित्र-विकास, अन्तर्द्वन्द्व, सन्देश, उद्देश्य आदि का सारा स्वरूप प्रत्यक्ष कराना होता है; केवल कहीं-कहीं संक्षिप्त रंगमंच निर्देशों के माध्यम से वह अभिनय का संकेत कर सकता है। कहने का तात्पर्य है कि कहानीकार की अपेक्षा एकांकीकार का शिल्प-निर्वाह अधिक दक्षता का कार्य है। इस प्रकार एकांकी और नाटक में पर्याप्त भिन्नता है।

एकांकी के तत्त्व

एकांकी के तत्त्वों के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद हैं। विभिन्न विद्वानों ने इसमें तीन से लेकर दस तत्त्वों को माना है। पाठ्यक्रम में निर्धारित एकांकियों के अन्तर्गत निम्नलिखित छह तत्त्वों को मान्यता दी गयी है—

(1) कथावस्तु, (2) पात्र एवं चरित्र-चित्रण (3) संवाद (4) भाषा-शैली (5) देश-काल और वातावरण (6) उद्देश्य।

1. कथावस्तु—जिस कथा के आधार पर एकांकी की रचना एवं प्रस्तुति की जाती है, उसे एकांकी की कथावस्तु कहते हैं। विषय के अनुरूप एकांकी की कथावस्तु विभिन्न प्रकार की होती हैं; जैसे—पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, काल्पनिक आदि। कथावस्तु एकांकी की मूल संवेदना है। एकांकीकार जिस विशेष उद्देश्य से किसी विशिष्ट भाव,

विचार अथवा समस्या को अभिव्यक्त करना चाहता है, उसी के अनुरूप कथावस्तु को आरम्भ से अन्त तक घुमाव-फिराव के नाटकीय मोड़ों के बीच चमत्कारपूर्ण वेग के साथ गठित करता है।

एकांकी में कथा का प्रारम्भ इस प्रकार होता है कि दर्शक उसकी ओर सहज में ही आकृष्ट हो जाता है, उसमें उसका मन रम जाता है। एकांकीकार को बराबर ध्यान रखना पड़ता है कि दर्शक का मन कहीं भी उचटने न पाये अर्थात् कौतूहलता की भावना बनी रहे और जहाँ यह भावना अपनी चरम स्थिति तक पहुँचती है, वहीं प्रायः एकांकी समाप्त हो जाता है। कथानक के नियोजन पर ही एकांकी की सफलता निर्भर करती है। वस्तुतः कथानक या कथावस्तु के बिना एकांकी का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

श्रीपति शर्मा का मानना है कि एकांकी में कथावस्तु नाममात्र को ही रहती है, परन्तु जैसे बरगद का छोटा बीज महान् वृक्ष का आकार धारण कर लेता है उसी प्रकार कथा का लघु-से-लघु अंश कलाकार की सफल तूलिका से एक सुन्दर कृति के रूप में परिणत हो जाता है। डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि घटना को प्रभावशाली बनाने के लिए उसका ऐसा अंश चुना जाता है, जिसमें वह अच्छी या बुरी हो सकती है।

एकांकी में मुख्यतः आरम्भ, उत्कर्ष और अन्त तीन कथास्थितियाँ होती हैं, लेकिन सुविधा के विचार से इसे चार अवस्थाओं में रख सकते हैं—(अ) आरम्भ, (ब) विकास, (स) चरमोत्कर्ष, (द) समाप्ति अथवा परिणति।

(अ) आरम्भ—एकांकी आरम्भ में परिचयात्मक होता है अर्थात् आरम्भ की अवस्था एकांकी की कथावस्तु की पृष्ठभूमि तैयार करती है। मुख्य घटना, समस्या, पात्र का परिचय और उद्घाटन ही इस भाग की विशेषता है। इसके अन्तर्गत वह पीठिका तैयार करनी पड़ती है, जिस पर एकांकी का अन्त प्रतिष्ठित होता है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' द्वारा लिखित एकांकी **'लक्ष्मी का स्वागत'** में **भाषी** और **माँ** के मध्य हुई प्रारम्भिक वार्त्ता एक प्रकार से एकांकी की पृष्ठभूमि ही है।

(ब) विकास—विकास के अन्तर्गत कार्य-व्यापार अथवा संघर्ष का रूप खुलकर सामने आता है। यहाँ पात्रों, आदर्शों, अधिकारों और सिद्धान्तों में विरोध अथवा द्वन्द्व एकांकीकार दिखाना चाहता है। उसका सारा द्वन्द्व संवादों के द्वारा स्पष्ट हो जाता है। द्वन्द्व से कथानक में नाटकीयता उत्पन्न हो जाती है और एकांकी रुचिकर हो जाता है।

(स) चरमोत्कर्ष—एकांकी यहाँ परिस्थितिजन्य प्रभावों को एकत्र करता हुआ अत्यन्त तीव्रता से उत्कर्ष बिन्दु पर पहुँचता है। इसीलिए कहा जा सकता है कि एकांकी उस छोटी दौड़ की प्रतियोगिता की भाँति है, जिसमें आरम्भ से लेकर अन्त तक दौड़ की तीव्रता में कहीं कमी नहीं आती। यह वह स्थल है, जहाँ एकांकी अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर पाठक या दर्शक की उत्सुकता को विशेष तीव्र एवं संवेदनशील बनाता है। यहाँ कौतूहल अपने चरम बिन्दु पर पहुँच जाता है। घटना एक आकस्मिक परिणाम की ओर अग्रसर होने लगती है।

(द) समाप्ति अथवा परिणति—परिणति या समापन का स्थल अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यहीं पहुँचकर एकांकी अपनी सम्पूर्ण संवेदनशीलता, प्रभावोत्पादकता एवं पूर्णता का परिचय देता है। प्रभाव की पूर्णता समापन का लक्ष्य है। सारी जिज्ञासा की वृद्धि और कौतूहल की समाप्ति यहीं आकर होती है। वही एकांकी कलापूर्ण है जिसमें चरम सीमा पर ही एक गूढ़ प्रभाव की व्यंजना के साथ ही कथावस्तु समाप्त हो जाती है। जैसे डॉ० रामकुमार वर्मा के **'दीपदान'** में **बनवीर** के हाथों **चन्दन** की हत्या ही एकांकी की परिणति है।

2. पात्र एवं चरित्र-चित्रण—एकांकी के पात्रों एवं उनके चरित्रों के आधार पर ही सम्पूर्ण एकांकी के भाव एवं कला-पक्ष की अभिव्यक्ति होती है। इसमें एक मुख्य पात्र होता है, शेष पात्र एकांकी की कथावस्तु के अनुसार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मुख्य पात्र के चरित्र को उभारने में ही सहायक होते हैं। एकांकी में पात्रों की संख्या जितनी कम होती है, उतना ही परिस्थिति का रंग उभरकर सामने आता है। अधिक पात्रों के होने से कथा और कथा की मूल संवेदना के उलझ जाने का भय रहता है। एकांकी के पात्रों का चरित्र-चित्रण एकांकीकार अपनी मौलिक रचना-प्रतिभा, शैली, संवाद आदि के आधार पर करता है। श्रेष्ठ एकांकी में पात्रों का चयन अत्यन्त सुनियोजित होता है और पात्रों के चरित्र-चित्रण में सहजता, स्वाभाविकता, सजीवता आदि का समावेश रहता है।

एकांकी के मूल भाव के अनुसार ही पात्रों के व्यक्तित्व, चरित्र एवं प्रवृत्तियों का निर्धारण होता है। एकांकी की मूल भावना को उद्दीप्त करने के लिए दो-एक गौण पात्रों की भी योजना एकांकीकार को करनी पड़ती है। गौण पात्रों के चयन में यह ध्यान रखना चाहिए कि उनमें से प्रत्येक के चरित्र में कोई-न-कोई व्यक्तिगत विशेषता अवश्य हो। इसी विशेषता के कारण एक पात्र का दूसरे पात्र से संघर्ष होता है। भिन्न-भिन्न स्वभाव एवं संस्कार के पात्रों के पारस्परिक संघर्ष एवं सम्पर्क से एकांकी में सक्रियता प्रत्येक क्षण बनी रहती है। पात्रों का यही जीवन-संघर्ष विविध सन्दर्भों में प्रस्तुत करना एकांकीकार के शिल्प की कुशलता है।

आज के बौद्धिक युग का दर्शक या पाठक चारित्रिक वैचित्र्य को देखना व समझना चाहता है, इसलिए एकांकी के पात्र जीते-जागते, चलते-फिरते, अपनी निजी प्रेरणा और अभिरुचि से परिचालित दीखने चाहिए। नाटकों में नायक और उसके

सहायकों का चरित्र-चित्रण मूलतः घटनाओं के माध्यम से किया जाता है, जबकि एकांकी के पात्रों का चरित्र नाटकीय परिस्थितियों और व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्व के सहारे सांकेतिक रहता है। सच तो यह है कि एकांकी में पात्रों की चरित्रगत मूल विशेषता के उद्‌घाटन द्वारा ही उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व की झलक दिखायी देनी चाहिए। डॉ० रामकुमार वर्मा की **'दीपदान'** एकांकी की प्रमुख पात्र **पन्ना धाय** द्वारा अपने पुत्र **चन्दन** का बलिदान ही उसके समग्र चरित्र, स्वभाव एवं व्यक्तित्व की झलक प्रस्तुत कर देता है।

3. संवाद– संवाद के मुख्यतः दो कार्य होते हैं—पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं को उद्‌घाटित करना तथा कथा-प्रवाह को आगे बढ़ाना। परिस्थिति एवं पात्रों को जोड़ने के लिए और आन्तरिक भावों एवं मनोवृत्तियों के उद्‌घाटन के लिए संवाद तत्त्व की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। आवश्यकता से अधिक वार्त्तालाप उबा देनेवाला होता है और औचित्य का विचार न करके की गयी संवाद-योजना एकांकी की प्रभावान्विति में बाधा डालती है। अतः पात्र की शिक्षा-दीक्षा, देश-काल और सामयिक स्थिति के अनुरूप ही संवादों की योजना की जानी चाहिए। संवादों के द्वारा एक पात्र जो कुछ बोलता है, वह अर्थपूर्ण एवं उसकी विचारधारा का परिचायक होता है। एक पात्र द्वारा बोले गये शब्दों की प्रतिक्रिया दूसरे पात्रों पर होती है और वे चुभनेवाले होते हैं। इस तरह संवादों द्वारा कथावस्तु गतिशील हो उठती है।

चरित्रप्रधान एकांकियों में व्यक्तित्व और उसकी प्रवृत्तियों का परिचय देने के लिए संवाद अथवा कथोपकथन विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। संवाद द्वारा ही चारित्रिक विशेषताएँ प्रकट होती हैं। अभिवादन, सम्बोधन, प्रेम, क्रोध आदि को व्यक्त करने के लिए औचित्य एवं मर्यादा को ध्यान में रखकर भाषा का प्रयोग आवश्यक है। कथानक को निरन्तर सक्रिय और गतिशील बनाये रखना तथा पात्रों की स्वभावगत चारित्रिक विशेषताओं को उभारते रहना और स्वाभाविक रूप से परिणति की ओर अग्रसर करते रहना ही संवाद-योजना का लक्ष्य होता है। एकांकी में प्रत्येक संवाद सप्रयोजन होना चाहिए, निरर्थक और अनावश्यक वार्त्तालाप को कहीं स्थान नहीं मिलना चाहिए। एकांकी में जिज्ञासा और कुतूहल को जगाने के लिए बहुधा नाटकीय संवादों की योजना करनी पड़ती है। कथावस्तु, विषय प्रतिपादन एवं योजना की दृष्टि से संवाद की भाषा को व्यावहारिक स्वरूप भी देना पड़ता है। समय के बदलते चक्र में पात्रों के लड़ाई-जैसे स्थूल कार्य-व्यापारों को संकेतों के द्वारा व्यक्त किया जाने लगा। इन संकेतों को भी अब संवादों के द्वारा व्यक्त किया जाता है। प्रभावी संवाद को चुस्त, चुटीला, मार्मिक और सुननेवाले पात्र के भीतर उद्वेग, उत्तेजना एवं प्रतिक्रिया जगाने में सक्षम होना चाहिए। जैसे कि जगदीशचन्द्र माथुर की एकांकी **'रीढ़ की हड्डी'** में **उमा** कहती है—"क्या जवाब दूँ बाबू जी! जब कुर्सी-मेज बिकती है, तब दुकानदार कुर्सी-मेज से कुछ नहीं पूछता, सिर्फ खरीदार को दिखला देता है। पसन्द आ गयी तो अच्छा है, वरना·····।" शिष्ट हास्य एवं व्यंग्य से समन्वित होकर संवाद यहाँ सजीव हो उठा है।

4. भाषा-शैली–भावों को अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम भाषा है और अभिव्यक्ति का ढंग शैली है। एकांकीकार विषय-तत्त्व के अनुरूप विशिष्ट भाषा-शैली को अपनाता है। एक ही विषयवस्तु को लेकर विभिन्न विधाओं की कथा लिखी जा सकती है, लेकिन उसी विषयवस्तु को कवि अपने ढंग से प्रस्तुत करता है तो नाटककार अपने ढंग से और एकांकीकार अपने ढंग से। अपने संवादों की भाषा-शैली के द्वारा एक कहानीकार उसी विषयवस्तु को किसी अन्य परिणति तक पहुँचाता है और एकांकीकार किसी अन्य परिणति तक। विषयवस्तु के प्रति लेखक का जैसा दृष्टिकोण होता है, उसकी अभिव्यक्ति के लिए वह वैसा ही माध्यम भी चुनता है। माध्यम के भिन्न हो जाने से भाषा-शैली भी भिन्न हो जाती है। सरल और बोधगम्य भाषा के द्वारा एकांकी को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।

साधारण-से-साधारण कथावस्तु में भी कुशल लेखक अपनी सुन्दर भाषा-शैली से प्राण-प्रतिष्ठा कर देता है। ध्यातव्य है कि एकांकी की भाषा का प्रयोग पात्र की शिक्षा, संस्कृति, वातावरण एवं परिस्थिति के अनुरूप ही होना चाहिए। यदि पात्र का सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर ऊँचा है तो भाषा शिष्ट और शैली परिष्कृत ही होती है। यदि उसका सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर नीचा है तो उसकी भाषा और शैली में ये गुण दिखायी नहीं देंगे। सेठ गोविन्ददास द्वारा लिखित एकांकी **'सच्चा धर्म'** में **दिलावर खाँ** और **रहमान बेग** के संवादों तथा **पुरुषोत्तम** और उसकी पत्नी **अहिल्या** के संवादों की भिन्नता में यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

5. देश-काल और वातावरण–एकांकी में किसी विशेष देश-काल अथवा वातावरण से सम्बन्धित पात्रों एवं घटनाओं का चित्रण होता है। यह चित्रण सजीव एवं स्वाभाविक तभी हो सकता है जब एकांकी की भाषा, पात्रों की वेश-भूषा, पात्रों की भाषा को उसी काल के अनुरूप रखा जाय। इससे उस काल का सजीव एवं स्वाभाविक चित्र उपस्थित होता है और दर्शकों की रसानुभूति तीव्र हो जाती है। जिस देश और काल के समाज को लेकर एकांकी रचा जाता है, उससे सम्बन्धित वातावरण, इतिहास, संस्कृति, वेश-भूषा, खान-पान, रीति-रिवाज आदि का सहज, स्वाभाविक और प्रामाणिक चित्र खींचा जाता

है। सम्पूर्ण परिस्थितियों की योजना साभिप्राय और क्रमिक ढंग से की जाती है और प्रकृति, ऋतु, दृश्य आदि का अत्यन्त संक्षिप्त और सांकेतिक रूप में वर्णन करके किसी घटना अथवा परिणाम को सजीव एवं यथार्थ बना दिया जाता है। इसके अभाव में कृत्रिमता, काल-दोष, अनौचित्य का प्रवेश न हो जाय, इस दृष्टि से देश-काल अथवा वातावरण के निर्वाह का एकांकी में अपना विशिष्ट महत्त्व है।

डॉ0 रामकुमार वर्मा के '**दीपदान**' एकांकी को पढ़ते या देखते समय वातावरण के निर्वाह की दृष्टि से हम कल्पना में भारत की 16वीं शताब्दी के राजपूत सामन्ती युग में पहुँचकर प्रमुख पात्र **पन्ना धाय** के चरित्र में एक ऐसी स्वामिभक्ति पाते हैं, जो उस युग की गौरवमय विशेषता थी। विष्णु प्रभाकर की '**सीमा-रेखा**' एकांकी में समसामयिक परिस्थिति का एक चित्र प्रस्तुत करते हुए एकांकीकार संवादों और द्रुत गति से बदलती हुई स्थिति द्वारा ऐसा वातावरण बना देता है, जिसमें **लक्ष्मीचन्द्र, विजय** और **शरतचन्द्र** तीनों भाई के स्वभाव का एकाएक परिवर्तन अत्यन्त स्वाभाविक ही नहीं, बल्कि अपरिहार्य भी दृष्टिगोचर होता है। ऐसे वातावरण-प्रधान एकांकी प्रभाव की दृष्टि से बड़े सजीव और मर्मस्पर्शी होते हैं।

6. उद्देश्य—एकांकी का उद्देश्य पुष्प में गन्ध की भाँति उपस्थित रहता है। जिस एकांकी का उद्देश्य जितना लोकमंगलकारी होता है, उसका साहित्यिक मूल्य भी उतना ही अधिक बढ़ जाता है। एकांकीकार का उद्देश्य पात्रों के माध्यम से व्यंजित होता है। '**हिन्दी साहित्य कोश**' में उद्देश्य तत्त्व के सम्बन्ध में इस प्रकार वर्णित है—*''उद्देश्य वह तत्त्व है, जिसमें लेखक की उस सामान्य या विशिष्ट जीवन-दृष्टि का विवेचन होता है जो उसकी कृति में कथावस्तु के विन्यास, पात्रों की योजना, वातावरण के प्रयोग आदि में सर्वत्र निहित पायी जाती है। इसे लेखक का जीवन-दर्शन या जीवन-दृष्टि या जीवन की व्याख्या या जीवन की आलोचना कह सकते हैं।''* एकांकी का केन्द्रीय भाव ही वह हेतु या उद्देश्य है, जिसके लिए एकांकी ली जाती है। प्रत्येक एकांकी के पीछे कोई विशेष संवेदना, समस्या, भावना अथवा जीवन-दृष्टि होती है जिसे एकांकीकार सांकेतिक रूप में जाने-अनजाने अभिव्यक्ति देना चाहता है। यही एकांकी में उद्देश्य तत्त्व है, जिसका स्पष्ट उल्लेख न तो आवश्यक है और न उपयोगी, पर जिसका स्वर एकांकी में आदि से अन्त तक किसी-न-किसी रूप में गूँजता रहता है।

एकांकी के अन्य तत्त्व

(अ) अन्तर्द्वन्द्व—बाह्य जीवन में जिस प्रकार परस्पर विरोधी पात्रों के बीच घटनाओं का संघर्ष दिखायी देता है, उसी प्रकार पात्रों के भाव-जगत् में परस्पर विरोधी वृत्तियों का संघर्ष चलता रहता है, जिसे अन्तर्द्वन्द्व कहा जाता है। भावुक और उत्तेजनाशील पात्रों में आन्तरिक द्वन्द्व बड़ा प्रबल होता है। **डॉ0 रामकुमार वर्मा** के अनुसार—*''नाट्य-कला की दृष्टि से अन्तर्द्वन्द्व का बड़ा महत्त्व है। कथावस्तु तीव्र गति से चरम सीमा की ओर बढ़ती है। जैसे-जैसे कथावस्तु चरम सीमा की ओर बढ़ती जाती है, वैसे ही पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व दिन के प्रकाश की भाँति प्रत्यक्ष होता जाता है। पाठक या दर्शक भी अन्तर्द्वन्द्व के समाप्त होते ही अनुभव करता है कि समस्त घटनाएँ बिजली की भाँति उसके हृदयाकाश पर तड़पकर विलीन हो गयीं।''* आन्तरिक द्वन्द्व के द्वारा ही पात्रों के चरित्रगत विशेषताओं का स्वरूप एवं विकास प्रत्यक्ष होता है।

सेठ गोविन्ददास की एकांकी '**सच्चा धर्म**' में सम्पूर्ण एकांकी **अहिल्या** और **पुरुषोत्तम** के अन्तर्द्वन्द्व में ही चरमोत्कर्ष पर पहुँचती है और जब **पुरुषोत्तम** का अन्तर्द्वन्द्व समाप्त होता है तो वह परिणति के रूप में दर्शकों को आनन्द से आप्लावित कर देता है। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की '**लक्ष्मी का स्वागत**' एकांकी में **रौशन** का अन्तर्द्वन्द्व, जगदीशचन्द्र माथुर की एकांकी '**रीढ़ की हड्डी**' में **उमा** का अन्तर्द्वन्द्व, विष्णु प्रभाकर की एकांकी '**सीमा-रेखा**' में **शरतचन्द्र** का अन्तर्द्वन्द्व अनेक मूल विशेषताओं को उद्घाटित करता है।

(ब) संकलन-त्रय— संकलन-त्रय का तात्पर्य कार्य, स्थान और काल के संकलन से है। कथावस्तु एक ही कृत्य के सम्बन्ध में हो, पूरी घटना एक ही स्थान में घटित हो, दृश्य-परिवर्तन कम-से-कम हो, साथ ही एकांकी की मूल घटना जितने काल में घटित हो, उतने ही काल में उसका अभिनय भी सम्भव हो। स्थान-संकलन और काल-संकलन से यही तात्पर्य है। कार्य-संकलन से तात्पर्य यह है कि कार्य-व्यापार में क्रमिक व्यवस्था हो, बिखराव न हो, स्वाभाविक क्रम का निर्वाह हो। आजकल विद्वान् संकलन-त्रय या संकलन-द्वय के नियम को आवश्यक नहीं मानते, जबकि इसके बिना एकांकी की पूर्ण सफलता में सन्देह रह जाता है।

स्थान-संकलन और काल-संकलन की आवश्यकता के सम्बन्ध में मतभेद रहा है, जबकि कार्य-संकलन की अनिवार्यता के विषय में सभी सहमत हैं। **डॉ0 रामकुमार वर्मा** के अनुसार संकलन-त्रय एकांकी-कला की मूल आत्मा है। **सेठ गोविन्ददास** ने संकलन-त्रय में से केवल संकलन-द्वय (i) एक ही काल की घटना (ii) एक ही कृत्य को एकांकी के शिल्प-विधान में अनिवार्य माना है। बाद में उन्होंने एकांकी शिल्प में से काल-संकलन को भी पृथक् कर दिया तथा इसकी पूर्ति के लिए

रचना-विधान में उपक्रम एवं उपसंहार की प्रतिष्ठा की। **डॉ0 नगेन्द्र** का मानना है कि एकांकी में हमें जीवन का क्रमबद्ध विवेचन न मिलकर उसके एक पहलू, एक महत्त्वपूर्ण घटना, एक विशेष परिस्थिति अथवा उद्दीप्त रूप का चित्र मिलेगा; जिसके लिए एकता, एकाग्रता अनिवार्य है। डॉ0 नगेन्द्र एकांकी के लिए स्थान एवं काल-संकलन को आवश्यक नहीं मानते। कई अन्य विद्वान् भी स्वीकार करते हैं कि यह एकांकीकार के कौशल पर निर्भर करता है।

वास्तविकता यह है कि आज के वैज्ञानिक युग में दृश्य-परिवर्तन के अनेक साधन सुलभ होते जा रहे हैं। पहले यूरोपीय नाटकों में संकलन-त्रय की आवश्यकता रंगमंच पर दृश्य-परिवर्तन प्रदर्शित करने की तत्कालीन कठिनाइयों को ध्यान में रखकर समझी गयी थी। अतः अब एकांकी की कथावस्तु के गठन में कार्य-संकलन के प्रति ही विशेष सावधानी अपेक्षित है, स्थान और काल के संकलन का उतना महत्त्व नहीं रह गया है।

संकलित एकांकियों के घटना-प्रसंग एक-एक कमरे में सीमित हैं। सभी एक दृश्यवाले एकांकी हैं, लेकिन सेठ गोविन्ददास के 'सच्चा धर्म' एकांकी में तीन दृश्य हैं। इस एकांकी की कथा पुरुषोत्तम के मकान के एक कमरे में और दिल्ली की एक गली, दो स्थानों में घटित होती है, फिर भी कथा में एकसूत्रता बनी रहती है।

(स) अभिनेयता—यद्यपि अनेक विद्वानों ने एकांकी के इस तत्त्व की अनिवार्यता को मान्यता नहीं दी है, तथापि इसके महत्त्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि एकांकी की प्रस्तुति अभिनय के द्वारा ही की जाती है। जिस एकांकी में अभिनय सम्बन्धी तत्त्वों का समावेश न हो, वह एकांकी दर्शकों तक न पहुँच पाने के कारण दृश्यात्मक साहित्य के रूप में अर्थहीन हो जाता है। अतः एकांकी में अभिनेयता पर भी विचार किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। एकांकीकार को एकांकी की कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, संवाद-योजना, भाषा-शैली, देश-काल एवं वातावरण तथा उद्देश्य, सभी की योजना इसमें करनी चाहिए, जिससे अभिनय में कोई असुविधा न हो। एकांकी को अभिनेय बनाने के लिए एकांकी के आकार की संक्षिप्तता, घटना-व्यापारों की व्यवस्था, पात्रों की स्वाभाविक वेश-भूषा, बोलचाल और भाव-व्यंजना, संवादों की रोचकता और सरसता, भाषा-शैली की रोचकता एवं नाटकीयता, वातावरण का उचित निर्वाह, उद्देश्य और सांकेतिक व्यञ्जना तथा आदि से अन्त तक उत्सुकता जगानेवाली गतिशीलता के प्रति एकांकीकार को सचेत रहना चाहिए। अतः एकांकी के अभिनेयता तत्त्व को भुलाया नहीं जा सकता, क्योंकि यही तो एकांकी का प्राण है।

एकांकी के प्रकार

विद्वानों ने 'एकांकी' के अनेक भेदों का उल्लेख किया है, परन्तु साहित्य की दृष्टि से रचना प्रकार का वर्गीकरण मुख्यतः तीन दृष्टियों से किया जाता है—

(अ) विषय की दृष्टि से, (ब) प्रतिपाद्य की दृष्टि से, (स) शैली अथवा शिल्प की दृष्टि से।

(अ) विषय की दृष्टि से एकांकी को दस कोटियों में बाँटा जा सकता है–

1. सामाजिक एकांकी—सामाजिक समस्याओं को आधार बनाकर सामाजिक एकांकी की रचना की जाती है। सामाजिक एकांकी का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। सामाजिक जीवन के विविध पक्ष, यथा—प्रेम-विवाह, वर्ग-संघर्ष, पीढ़ी-संघर्ष तथा अस्पृश्यता इसके अन्तर्गत आते हैं। जैसे—**'फैसला'** (विनोद रस्तोगी), **'लक्ष्मी का स्वागत'** (उपेन्द्रनाथ 'अश्क')।

2. ऐतिहासिक एकांकी—इतिहास अथवा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर लिखे गये एकांकी ऐतिहासिक एकांकी होते हैं। जैसे—**'दीपदान'** (डॉ0 रामकुमार वर्मा)।

3. मनोवैज्ञानिक एकांकी—मनोविज्ञान के आधार पर रचित एकांकी मनोवैज्ञानिक एकांकी होते हैं। जैसे—**'मकड़ी का जाला'** (जगदीशचन्द्र माथुर)।

4. राजनैतिक एकांकी—किसी राजनैतिक गतिविधि पर प्रकाश डालनेवाले एकांकी राजनैतिक एकांकी होते हैं। जैसे—**'पिशाचों का नाच'** (उदयशंकर भट्ट), **'सीमा-रेखा'** (विष्णु प्रभाकर)।

5. चारित्रिक एकांकी—जिन एकांकियों का मूलोद्देश्य किसी चरित्र-विशेष का सौन्दर्य या असौन्दर्य अनुभूत कराना होता है। जैसे—**'उत्सर्ग'** (डॉ0 रामकुमार वर्मा)।

6. पौराणिक एकांकी—पुराणों पर आधारित कथावस्तु को लेकर लिखे गये एकांकी पौराणिक एकांकी होते हैं। जैसे—**'मुद्रिका'** (सद्गुरुशरण अवस्थी), **'राजरानी सीता'** (डॉ0 रामकुमार वर्मा)।

7. सांस्कृतिक एकांकी—सांस्कृतिक समस्या पर आधारित एकांकी सांस्कृतिक एकांकी होते हैं। जैसे—**'प्रतिशोध'** (डॉ0 रामकुमार वर्मा), **'सच्चा धर्म'** (सेठ गोविन्ददास)।

8. आंचलिक एकांकी—किसी अंचल-विशेष की घटना पर आधारित वहाँ की लोकभाषा, रीति-व्यवहार, रहन-सहन, भूगोल आदि का चित्रण आंचलिक एकांकी में किया जाता है।

9. दार्शनिक एकांकी—दार्शनिक विषयों पर आधारित दार्शनिक एकांकी है। यथा—उदयशंकर भट्ट, लक्ष्मीनारायण मिश्र दार्शनिक एकांकीकार हैं।

10. तथ्यपरक एकांकी—एकांकीकार किसी विशेष सन्देश अथवा उद्देश्य पर बल न देकर किसी प्रसंग का नाटकीय चित्र अंकित करके प्रभाव अथवा निष्कर्ष ग्रहण करने का दायित्व पाठक या दर्शक पर छोड़ देता है। जैसे—'**मानव-मन**' (सेठ गोविन्ददास)।

(ब) प्रतिपाद्य की दृष्टि से एकांकी के अनेक भेदों की कल्पना की जा सकती है, यद्यपि इनकी कोई निश्चित सीमा नहीं निर्धारित की जा सकती। इसके अन्तर्गत समस्यामूलक एकांकी, हास्य एकांकी, व्यंग्य एकांकी, विचारपरक एकांकी और वैज्ञानिक एकांकी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। समस्यामूलक एकांकी में वैयक्तिक अथवा सामाजिक समस्या से सम्बन्धित उलझनों के चित्रण तथा कहीं-कहीं उसके सुलझाने का संकेत देते हुए एकांकी का गठन होता है। आज के समस्या-संकुल जीवन में ऐसे एकांकी बड़े प्रभावपूर्ण और भावोत्तेजक सिद्ध होते हैं। हास्य एकांकी में हास्य-विनोद का पुट रहता है, एकांकीकार ऐसे घटना-चक्र तथा ऐसे विचित्र मनमौजी पात्रों की सृष्टि करता है, जिससे संवाद पाठक और दर्शक के चित्त में एक प्रकार की गुदगुदी जगाते हुए उसे हँसाते चलते हैं। मनोरञ्जन और नयी स्फूर्ति के प्रेरक ऐसे एकांकी बड़े लोकप्रिय होते हैं। इनमें प्रायः सरल, सहज और उत्तेजनायुक्त वातावरण का निर्वाह होता है।

व्यंग्य एकांकी में हास्य-विनोद के पुट के साथ-साथ व्यक्ति, समाज अथवा परिवार की किसी विषमता अथवा विडम्बना के प्रति तीखा और चुटीला व्यंग्य होता है। एक-एक घटना-व्यापार और संवाद का एक-एक शब्द बाह्य आवरण के पीछे छिपकर झाँकती हुई अनेक ग्रन्थियों और प्रतिक्रियाओं का रोचक तथा सांकेतिक पर्दाफाश करता चलता है। ऐसे एकांकियों की भाषा-शैली दुहरे अर्थ की व्यञ्जना करती हुई पग-पग पर एक नये रहस्य का उद्घाटन करती चलती है।

विचारात्मक एकांकी किसी विशेष बौद्धिक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति करता है। इसके पात्र अपने निजी विचारों को नाटकीय रोचकता के साथ व्यक्त करते हुए किसी विशेष समाधान की ओर संकेत करते हैं। वैज्ञानिक एकांकी आज के विज्ञान-जगत् की किसी पहेली को लेकर प्रयोगशाला के वातावरण की झलक संवादों के माध्यम से देते हैं तथा व्यवहार-जगत् में विज्ञान की चर्चा को मनोरञ्जक रूप प्रदान करते हैं। डॉ0 धर्मवीर भारती का 'सृष्टि का आखिरी आदमी' इसी प्रकार का एकांकी है।

(स) शैली अथवा शिल्प की दृष्टि से एकांकी को चार कोटियों में बाँटा जा सकता है—

(i) स्वप्न रूपक (फैण्टेसी) (ii) प्रहसन (iii) काव्य एकांकी (iv) रेडियो-रूपक। **स्वप्न रूपक** अर्थात् अतिकल्पना प्रधान एकांकी में एकांकीकार बहुत दूर तक अपनी कल्पना का सहारा लेता है। डॉ0 रामकुमार वर्मा का '**बादल की मृत्यु**' ऐसा ही एकांकी है। **प्रहसन** में व्यंग्यात्मक ढंग से व्यंग्य-विनोद और परिहास की सृष्टि की जाती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रहसन '**अन्धेर नगरी**' प्रसिद्ध है। **काव्य एकांकी** का माध्यम काव्य होता है। वह छन्दबद्ध, तुकान्त और अतुकान्त रूप में हो सकता है। काव्य एकांकी में आवश्यक है कि उसमें नाटकीयता और कवित्व दोनों हो। उदयशंकर भट्ट का **तारा,** भगवतीचरण वर्मा का '**कर्ण**' और सुमित्रानन्दन पन्त का '**रजत शिखर**' काव्य एकांकी है।

रेडियो-रूपक आज का बहुत ही लोकप्रिय प्रकार है। इन एकांकियों की रचना आकाशवाणी पर प्रसारण के लिए की जाती है। इनमें ध्वनि-विशेष के द्वारा अभिनय और क्रिया-व्यापारों का निर्वाह होता है। यहाँ पर श्रोता आँख का काम कान से लेते हैं। विशेष प्रकार की ध्वनियों को सुनकर वे विशिष्ट दृश्य एवं भाव की कल्पना करके इन एकांकियों का रस लेने में समर्थ होते हैं। सुमित्रानन्दन पन्त का '**शिल्पी**' तथा डॉ0 रामकुमार वर्मा का '**बादल की मृत्यु**' इसी प्रकार के एकांकी हैं।

रचना-विधान के अनुरूप एकांकी के एक दृश्यीय, एक पात्रीय तथा अनेक पात्रीय जैसे भेद भी सम्भव हैं। एक पात्रीय एकांकी वे हैं जिनमें केवल एक ही पात्र अपनी विशिष्ट कला से कई पात्रों के संवाद एवं क्रिया-व्यापारों का अभिनय करने में समर्थ होता है। मुख्यतः रेडियो-रूपक के दो भेद होते हैं—ध्वनि रूपक और वृत्त रूपक। ध्वनि रूपक की कथावस्तु वृत्त रूपक की कथावस्तु से भिन्न होती है। ध्वनि रूपक में केवल ध्वनि का महत्त्व होता है तथा वृत्त रूपक में संवाद के बीच-बीच में बहुत-सा वर्णन सूत्रधार के माध्यम से दिया जाता है।

एकांकी के उपर्युक्त प्रकारों के अतिरिक्त अन्य भेद-विभेद व्यक्तिगत और सामाजिक रुचि के अनुरूप किये जा सकते हैं। वैषम्य एकांकी, विद्रूप एकांकी, फीचर, मालावत् एकांकी, दुःखान्त एकांकी, सुखान्त एकांकी, मेलोड्रामिटिक (अति नाटकीय) एकांकी, व्याख्यामूलक एकांकी, आदर्शमूलक एकांकी, अनुभूतिमय एकांकी, आदर्शवादी एकांकी, यथार्थवादी एकांकी, कलावादी एकांकी, प्रगतिवादी एकांकी आदि अनेक प्रकारों की चर्चा भी की जा सकती है।

हिन्दी एकांकी : उद्‌भव और विकास

हिन्दी एकांकी के जन्म के सम्बन्ध में विद्वानों के दो वर्ग हैं। एक वर्ग हिन्दी एकांकी का विकास संस्कृत नाट्य-कला से मानता है तो दूसरा वर्ग एकांकी को पाश्चात्य साहित्य की देन स्वीकार करता है। पाश्चात्य साहित्य में यद्यपि यूनान के नाटकों की परम्परा आरम्भ होती है और कालान्तर में ईसाई आदर्शों के प्रचारार्थ चर्च में अभिनीत धार्मिक अथवा सन्तों के जीवन से सम्बन्धित रहस्य नाटक और रहस्यात्मक नाटक का प्रचलन रहा। क्रमशः 11वीं-12वीं शताब्दी के नीतिपरक नाट्यरूप और प्रासंगिक नाट्यरूप का जन-सामान्य में प्रचार हुआ। इन्हीं आरम्भिक लघु नाट्यरूपों में पाश्चात्य एकांकी का बीज दिखायी दे जाता है।

एकांकी का जो आधुनिकतम रूप आज निश्चित-सा हो गया है, उसकी उपज इंग्लैण्ड में 19वीं शताब्दी के अन्त में 'कर्टेन रेजर' अथवा पट्टोन्नायक से मानी जाती है। कहा जाता है कि उस समय वहाँ एक ऐसा शिष्ट वर्ग था, जो रात्रि में पर्याप्त विलम्ब से भोजन करता है। व्यावसायिक नाटक कम्पनियों के अधिकारी अपना नाटक प्रारम्भ करने के लिए ऐसे लोगों की प्रतीक्षा करते थे, परन्तु समय पर आये हुए दर्शकों का मनोरञ्जन करना भी उनका कर्त्तव्य हो जाता था। अतः वे मुख्य नाटक से पूर्व कुछ छोटे-छोटे नाटकों का प्रदर्शन करते थे। इसे मुख्य पर्दे को उठाने से पूर्व अभिनीत कर लिया जाता था। इसी कारण इन छोटे नाटकों को 'कर्टेन रेजर' नाम दिया गया। धीरे-धीरे यह विधा लोकप्रिय होती गयी।

सन् 1903 में विलियम जेकब की कहानी 'मंकीज पॉ' के आधार पर लुई पार्कर ने एक छोटा कर्टेन रेजर लिखा। दर्शकों ने इसे बहुत अधिक पसन्द किया। पाश्चात्य देशों में पिछली अर्द्ध शताब्दी में इस कला की आशातीत उन्नति हुई और आगे चलकर इसका प्रभाव हिन्दी एकांकी पर पड़ा।

हिन्दी एकांकी के उद्‌भव और विकास का जहाँ तक सम्बन्ध है, इस ओर भारतेन्दु-युग से ही प्रयोग आरम्भ हो गये थे। उसके पूर्व भी एक अंक की रचनाओं को लघु रास ग्रन्थों में देखा जा सकता है। कृष्ण-भक्ति के सम्प्रदायों द्वारा वृन्दावन में अभिनीत रासलीला के नाट्यरूपों में भी एकांकी का विशिष्ट भावमय प्रवाह दिखायी देता है। भक्तों के लीला नाटकों में भी यह परम्परा विद्यमान रही है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं उनके सहयोगियों ने प्राचीन संस्कृत एकांकी के प्रति आस्था रखते हुए भी बँगला और अंग्रेजी एकांकियों की कला को अपनाने का प्रयास किया। इनमें विषय-तत्त्व की दृष्टि से नवीनता और यथार्थ बोध की प्रवृत्ति विद्यमान है, परन्तु नये-नये एकांकी शिल्प के प्रति ये उतने सचेत नहीं रह पाये। एकांकी के विकास का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

हिन्दी में एकांकी का प्रचलन नाटक के साथ **भारतेन्दु-युग** में ही हुआ था। स्वयं भारतेन्दु जी ने संस्कृत परम्परा पर आधारित मौलिक एकांकियों की रचना की। 'अन्धेर नगरी', 'प्रेम योगिनी', 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' उनके मौलिक प्रहसन हैं। भारतेन्दु जी के एकांकियों का नाट्यरूप प्राचीन शैली पर आधारित है, किन्तु उनमें प्रस्तुत की गयी समस्याएँ सर्वथा नवीन हैं। भारतेन्दु जी के अतिरिक्त इस युग में राधाचरण गोस्वामी, पं0 बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', किशोरीलाल गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास, राधाकृष्णदास आदि ने भी विविध प्रहसनों तथा एकांकियों की रचना की। भारतेन्दु-युग में हिन्दी एकांकी का उद्‌भव माना जाता है।

शिल्प की दृष्टि से **द्विवेदी-युग** भारतेन्दु-युग से एक कदम आगे बढ़ा अर्थात् द्विवेदी-युग में हिन्दी एकांकी का विकास हुआ। इस युग में प्रहसन और व्यंग्य की कोटि में आनेवाले अनेक एकांकियों की रचना हुई। इस युग में नियन्त्रण की पुरानी कठोर संस्कृत पद्धति छूटने लगी और नये ढंग के एकांकी लिखे जाने लगे। नयी समस्याएँ, विचारधारा एवं गद्य की शिष्ट भाषा का प्रयोग आरम्भ हो गया। इस प्रकार के एकांकियों में 'चुंगी की उम्मीदवारी' (बदरीनाथ भट्ट); 'रेशमी रूमाल', 'किसमिस' (रामसिंह वर्मा), 'मूर्ख मण्डली' (रूपनारायण पाण्डेय), 'शेरसिंह' (मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा), 'कृष्णा' (सियारामशरण गुप्त); 'नीला', 'दुर्गावती', 'पन्ना' (ब्रजलाल शास्त्री); 'चार बेचारे' (पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'); 'आनरेरी मजिस्ट्रेट' (सुदर्शन) आदि एकांकी उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक युग का प्रथम एकांकी जयशंकर प्रसाद का 'एक घूँट' माना जाता है। यद्यपि इस एकांकी में भी संस्कृत नाट्य-कला की ओर झुकाव परिलक्षित होता है, फिर भी इसमें आधुनिक एकांकी-कला का पूर्ण निर्वाह हुआ है। प्रसाद जी के पश्चात् तो डॉ0 रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वरप्रसाद मिश्र, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', उदयशंकर भट्ट, सेठ गोविन्ददास आदि एकांकीकारों ने तीव्र गति से हिन्दी एकांकी साहित्य को समृद्ध किया। इनमें से कुछ प्रमुख एकांकीकारों के योगदान का संक्षिप्त परिचय अग्रवर्णित है—

डॉ0 रामकुमार वर्मा ने एकांकी-रचना को अपनी साहित्य-साधना का लक्ष्य बनाया और हिन्दी में एकांकी के अभाव की पूर्ति की। उनका पहला एकांकी 'बादल की मृत्यु' 1930 ई0 में प्रकाशित हुआ था। वर्मा जी ने सौ से भी अधिक

एकांकियों की रचना की है। इन एकांकियों के विषय सामाजिक और ऐतिहासिक दोनों ही प्रकार के हैं। डॉ0 रामकुमार वर्मा की 'पृथ्वीराज की आँखें' तथा अन्य रचनाएँ भारतीय परिवेश का विशेष निर्वाह करती हैं। पाश्चात्य शिल्प को अपनाते हुए भी विषयवस्तु, चरित्रांकन तथा सांस्कृतिक वातावरण की रुचि में निजी भारतीय परम्परा के प्रति सजग रहने के कारण डॉ0 रामकुमार वर्मा आधुनिक हिन्दी एकांकी के जनक कहे जाते हैं। इनके एकांकियों में भारतीय आदर्श, त्याग, तपस्या, दया, करुणा आदि गुण सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं।

भुवनेश्वरप्रसाद का 'कारवाँ' एकांकी-संग्रह सन् 1935 ई0 में प्रकाशित हुआ था। उसमें संगृहीत एकांकी इस क्षेत्र में नये प्रयोग थे, लेकिन उस पर पाश्चात्य प्रभाव इतना अधिक है कि 'कारवाँ' अपनी जातीय परम्परा से कटा हुआ प्रतीत होता है लेकिन भाषा की शक्ति, उपमानों की नवीनता, मनोरम शब्द-विधान आदि के कारण इसमें अद्भुत आकर्षण आ गया है।

उदयशंकर भट्ट का पहला एकांकी-संग्रह 'अभिनव एकांकी' के नाम से 1940 ई0 में प्रकाशित हुआ था। इसके पश्चात् उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक विषयों पर सैकड़ों एकांकियों की रचना की। 'वर निर्वाचन', 'पर्दे के पीछे', 'नये मेहमान', 'गिरती दीवारें' आदि अनेक प्रसिद्ध एकांकी हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र के एकांकियों में 'अशोक वन', 'प्रलय के पंख पर', 'बलहीन', 'स्वर्ग में विप्लव' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि सभी प्रकार की समस्याओं को चित्रित किया गया है।

जगदीशचन्द्र माथुर बहुत पहले से एकांकी लिखते रहे हैं। इनका पहला एकांकी 'मेरी बाँसुरी' सन् 1936 ई0 में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। इसके पश्चात् उनके अनेक एकांकी प्रकाशित हुए जिनमें 'भोर का तारा', 'कलिंग विजय', 'खण्डहर', 'घोंसले', 'शारदीया' आदि मुख्य हैं। इन्होंने अपने एकांकियों के लिए मध्यमवर्गीय जीवन की अनेक समस्याएँ ली हैं, जिनके माध्यम से समाज के पाखण्ड तथा रूढ़ियों पर प्रहार करते हैं।

सेठ गोविन्ददास ने ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनीतिक आदि विभिन्न विषयों पर एकांकियों की रचना की है। इनके एकांकियों में 'ईद और होली', 'स्पर्द्धा', 'मैत्री' आदि उत्तम कोटि के समस्यामूलक एकांकी हैं। ये भाषा-शैली, शिल्प, विचार-प्रतिपादन आदि सभी दृष्टियों से प्रभावपूर्ण हैं। समस्याओं का व्यावहारिक हल ढूँढ़ने में इन्होंने सतर्कता बरती है, पर उनकी गहराई में बैठने का प्रयास कम किया है।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने अपने एकांकियों में समाज की विविध समस्याओं को सफलतापूर्वक चित्रित किया है। 'अश्क' जी के दो दर्जन से अधिक एकांकी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'लक्ष्मी का स्वागत', 'स्वर्ग की झलक', 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ', 'अधिकार का रक्षक' आदि इनके उल्लेखनीय एकांकी हैं। **विष्णु प्रभाकर** ने भी सामाजिक, राजनीतिक, हास्य-व्यंग्यप्रधान तथा मनोवैज्ञानिक एकांकी लिखे हैं।

एकांकी के क्षेत्र में **गणेशप्रसाद द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा** आदि ने भी योगदान दिया है। स्वतन्त्रता के पश्चात् अनेक नयी प्रतिभाओं ने एकांकी के क्षेत्र में प्रवेश किया। इनमें **विनोद रस्तोगी, जयनाथ नलिन, मोहनसिंह सेंगर, लक्ष्मीनारायण लाल, रामवृक्ष बेनीपुरी, सत्येन्द्र शरत, धर्मवीर भारती, चन्द्रशेखर** आदि के नाम आदर के साथ लिये जा सकते हैं।

आज पुरानी पीढ़ी के एकांकीकारों की अपेक्षा नयी पीढ़ी के एकांकीकारों में युग की नयी कुण्ठाओं, वर्जनाओं और विडम्बनाओं की अभिव्यक्ति के प्रति विशेष आग्रह दिखलायी देता है। पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों के प्रति नये एकांकीकारों ने एक नया रुख अपनाया है। वे पुरानी कथा लेकर उसे आज की समस्याओं के सन्दर्भ में प्रस्तुत करते हैं। पुराने चरित्रों का अंकन नवीन मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किया जाता है। वे आज के हमारे-जैसे ही पात्र प्रतीत होते हैं और उनकी समस्याएँ आज की मनोवृत्ति को प्रतिबिम्बित करने में समर्थ होती हैं। पाश्चात्य एकांकी-शिल्प का उपयोग करते हुए भी कुछ एकांकीकार प्राचीन संस्कृत नाट्यशास्त्र से प्रेरणा लेकर मौलिक भारतीय एकांकी का स्वरूप विकसित करने में तत्पर हैं।

युगीन परिस्थितियों ने एकांकी के स्वरूप-निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अब पुराना सब-कुछ ध्वस्त हो रहा है और नयी रूप-रेखा प्रस्तुत हो रही है। सामाजिक जीवन और विचार दोनों ही क्षेत्रों में उत्क्रान्ति हो रही है। फलतः साहित्यकार के ऊपर नयी जिम्मेदारियाँ आयी हैं। प्रतिदिन स्थितियों में परिवर्तन हो रहा है और इस नवीन सामयिक सन्दर्भ से एकांकी भी प्रभावित है। एकांकीकारों के सामने भी भावबोध के नवीन स्तर, सौन्दर्यबोध के नये आयाम और कल्पना के नये क्षितिज उद्घाटित हो रहे हैं।

❖

संकलित एकांकियों का सारांश

प्रस्तुत पाठ्य-पुस्तक में संकलित एकांकी दृश्य एवं श्रव्य दोनों हैं। ये जितने रंगमंचीय हैं, उतने ही सुपाठ्य। विद्यार्थियों को एकांकी की कथावस्तु, संवाद-योजना, चरित्रांकन, भाषा-शैली, देश-काल एवं वातावरण और उद्देश्य आदि सभी तत्त्वों की जानकारी के साथ ही अभिनय के प्रति भी जागरूक बनाने की आवश्यकता है। इसमें पाँच एकांकी संकलित किये गये हैं जो प्रतिपाद्य और शिल्प की दृष्टि से विशिष्ट कोटि की कलाकृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कक्षा 9 के विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक सोच को दृष्टिगत रखते हुए ये एकांकी पाठ्य-पुस्तक में संकलित किये गये हैं, जो भारतीय संस्कृति, राष्ट्रीय प्रेम, भावात्मक एकता, सामाजिकता एवं आधुनिक समस्याओं से छात्रों को परिचित कराते हैं। उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जी ने स्वयं अपने एकांकी **'लक्ष्मी का स्वागत'** के विषय में कहा था कि '' 'लक्ष्मी का स्वागत' मेरा पहला नख से शिख तक चुस्त-दुरुस्त एकांकी है।'' पाठ्य-पुस्तक में संकलित सभी एकांकियों का सारांश नीचे दिया जा रहा है।

दीपदान

'दीपदान' डॉ0 रामकुमार वर्मा का एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक एकांकी है। इस एकांकी में वर्मा जी ने बलिदान और त्याग की मूर्ति पन्ना धाय की ऐतिहासिक गौरव-गाथा का चित्रण किया है। संक्षेप में 'दीपदान' एकांकी की कथावस्तु इस प्रकार है—

चित्तौड़गढ़ के महाराजा राणा संग्रामसिंह के निधन के पश्चात् उनके अनुज पृथ्वीराज का दासी-पुत्र बनवीर चित्तौड़ का राजा बनकर निष्कण्टक राज्य करना चाहता है। कुल-परम्परा के अनुसार संग्रामसिंह के पुत्र कुँवर उदयसिंह को राज्य मिलना चाहिए था, किन्तु उदयसिंह अल्पवयस्क होने के कारण उसका उत्तराधिकारी नहीं था। अतः उदयसिंह के संरक्षक के रूप में बनवीर को चित्तौड़गढ़ की गद्दी सौंप दी गयी। दीपदान उत्सव के बहाने वह कुँवर उदयसिंह की हत्या का षड्यन्त्र रचता है। कुँवर उदयसिंह का पालन-पोषण करनेवाली पन्ना धाय चित्तौड़ के राजमहल में बैठी उसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उदयसिंह तुलजा भवानी के मन्दिर से लड़कियों के नृत्य को देखकर आ जाता है और पन्ना धाय को लेकर फिर जाना चाहता है। अनहोनी की आशंका से पन्ना धाय उसे पुनः वहाँ नहीं जाने देती। कुँवर उदयसिंह रूठकर शयन-कक्ष को छोड़कर दूसरे कक्ष में सोने चला जाता है। कुछ समय पश्चात् रावल सरूपसिंह की पुत्री सोना, जो कुँवर के साथ खेला करती थी, कुँवर को अपने साथ ले जाने के लिए पन्ना के पास आती है। सोना को बनवीर ने उदयसिंह को साथ लाने के लिए भेजा था। पन्ना बनवीर के इस षड्यन्त्र को भाँप लेती है और वह सोना से टाल-मटोल कर देती है।

कुछ ही क्षण के पश्चात् कुँवर को ढूँढ़ता हुआ पन्ना का पुत्र चन्दन आता है। उदयसिंह के सो जाने की बात सुनकर वह चला जाता है। उसी समय सामली नाम की दासी चीखती हुई पन्ना के पास आकर बताती है कि बनवीर ने सोते हुए विक्रमादित्य की हत्या कर दी है और अब वह इधर ही कुँवर की हत्या के लिए आ रहा है। दासी की बात सुनकर पन्ना व्याकुल हो जाती है और कुँवर की रक्षा का उपाय सोचने लगती है। कुँवर को लेकर पन्ना कुम्भलगढ़ भाग जाना चाहती है, लेकिन राजमहल को तो चारों ओर से बनवीर के सैनिकों ने घेर लिया है। संयोगवश महल का जूठन उठानेवाला कीरत बारी एक बड़ी टोकरी लेकर वहाँ आ जाता है। पन्ना दृढ़तापूर्वक उससे सारी बातें बताती है। स्वामिभक्त कीरत बारी पन्ना की योजनानुसार उदयसिंह को टोकरी में लिटाकर महल से बाहर लेकर चला गया। अब पन्ना सोचती है कि बनवीर को कुँवर के विषय में क्या बतायेगी। अन्ततः वह सोचती है कि कुँवर उदयसिंह की शय्या पर चादर उढ़ाकर अपने पुत्र चन्दन को सुला देगी। उसी समय वहाँ चन्दन आ जाता है। पन्ना उसे कुँवर उदयसिंह की शय्या पर लिटाकर, लोरियाँ गाते हुए सुला देती है। इस प्रकार उदयसिंह की रक्षा के लिए अपने पुत्र का बलिदान करने को पन्ना तत्पर हो जाती है।

उसी समय बनवीर हाथ में नंगी तलवार लिये उदयसिंह के कक्ष में प्रवेश करता है। वह जागीर का प्रलोभन देकर पन्ना को अपने षड्यन्त्र में सहायक बनाना चाहता है, किन्तु पन्ना अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहती है। वह बनवीर को फटकारती है। क्रोधित बनवीर चन्दन को उदयसिंह समझकर पन्ना की आँखों के सामने ही तलवार से मौत के घाट उतार देता है। वह क्रूरतापूर्ण शब्दों में कहने लगता है, ''यही है मेरे मार्ग का कण्टक!'' बनवीर के इस क्रूर काण्ड और पन्ना के अपूर्व त्याग के साथ एकांकी समाप्त

हो जाता है। एकांकीकार ने पन्ना के चरित्र से यह व्यक्त किया है कि राष्ट्रीय हित के लिए व्यक्तिगत एवं पारिवारिक हित का बलिदान करना पड़ता है। त्याग से मनुष्य महान् तथा स्वार्थलिप्सा से नीच बन जाता है। ♦

नये मेहमान

'नये मेहमान' उदयशंकर भट्ट जी का समस्या-प्रधान एकांकी है। इसमें महानगरों के मध्यमवर्गीय जीवन का सजीव और यथार्थ चित्रण हुआ है। बड़े-बड़े नगरों में आवास की समस्याएँ बहुत बढ़ गयी हैं। मेहमानों के आ जाने पर ये समस्याएँ कितनी अधिक बढ़ जाती हैं, किस प्रकार घर के सदस्यों का हृदय संकुचित हो जाता है, इस तथ्य का बड़ा रोचक और सजीव चित्रण प्रस्तुत एकांकी में हुआ है। इस एकांकी का सारांश इस प्रकार है—

एकांकी का मुख्य पात्र विश्वनाथ है। वह एक बड़े नगर की घनी बस्ती में रहता है। उसका मकान बहुत छोटा है। उसी में वह पत्नी रेवती तथा प्रमोद एवं किरण नाम के दो बच्चों के साथ जीवन व्यतीत कर रहा है। उसका छोटा बच्चा बीमार है, पत्नी का गर्मी के कारण बुरा हाल है, रात के आठ बज चुके हैं। मकान की छत बहुत छोटी है, उस पर चारपाई बिछाने तक का भी स्थान नहीं है। पड़ोसिन बहुत कठोर स्वभाव की है, वह अपने खाली छत का प्रयोग नहीं करने देती। दोनों पति-पत्नी एक-दूसरे को आराम पहुँचाने के विचार से परस्पर एक-दूसरे से छत पर सोने का आग्रह करते हैं। अन्ततः विश्वनाथ छत पर सोने के लिए तैयार हो जाता है।

जैसे ही वे दोनों सोने की तैयारी करते हैं, वैसे ही बाहर से कोई दरवाजा खटखटाता है। विश्वनाथ दरवाजा खोलता है तो दो अपरिचित व्यक्ति बिस्तर और सन्दूक के साथ अन्दर आ जाते हैं। उनके नाम बाबूलाल और नन्हेंमल हैं। विश्वनाथ उन्हें नहीं पहचानता, फिर भी वे बेशर्मी से घर में रुक जाते हैं और विश्वनाथ से बर्फ के ठण्डे पानी की माँग करते हैं। विश्वनाथ उनका पता पूछता है तो वे दोनों बातों में उड़ा देते हैं। विश्वनाथ संकोच के कारण कुछ नहीं कह पाता। वे दोनों पानी पीते हैं और पड़ोसी की छत पर पानी फैला देते हैं। पड़ोसी को गुस्से में देखकर विश्वनाथ क्षमा-याचना कर लेता है। जब विश्वनाथ दबे मन से उनसे भोजन के लिए पूछता है तो वे तुरन्त 'हाँ' कर देते हैं। रेवती खाना बनाने के लिए तैयार नहीं होती तथा बाहर से भी भोजन नहीं मँगाने देती और अपने पति से जिद करती है कि पहले इनका पता-ठिकाना पूछो। जब विश्वनाथ साफ-साफ पूछता है तो पता चलता है कि वे भूल से उसके घर आ गये हैं। वास्तव में उन्हें पड़ोस के ही कविराज रामलाल के घर जाना था। यह ज्ञात होने पर विश्वनाथ के बच्चे उन्हें सही स्थान पर पहुँचा आते हैं।

ज्यों ही पति-पत्नी इन दोनों से मुक्त होते हैं और सब लोग सोने ही वाले थे कि नीचे फिर दरवाजा खटखटाने की आवाज आती है। रेवती अपने भाई का स्वर पहचानकर प्रसन्न हो जाती है। रेवती को इस बात का दुःख है कि उसका भाई भी मकान ढूँढ़ता रहा और इतना परेशान होने के बाद सही स्थान पर पहुँचा है। बच्चे मिठाई और बर्फ लाने के लिए जाते हैं। भाई के बार-बार मना करने पर भी वह खाना बनाती है। विश्वनाथ मुस्कराकर व्यंग्य में कहता है—"कहो, अब?" इस पर रेवती कहती है—"अब क्या, मैं खाना बनाऊँगी, भैया भूखे नहीं सो सकते।" यहीं पर एकांकी समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत एकांकी में लेखक का उद्देश्य नगर की आवास-समस्या का चित्रण करना है। आज नगरों में आवास-समस्या इतनी जटिल है कि लोग नये मेहमानों से कतराते हैं। वे सगे-सम्बन्धी को तो कुछ समय के लिए रख सकते हैं, किन्तु एकाएक आये अतिथि से घबरा जाते हैं। ♦

व्यवहार

सेठ गोविन्ददास की तीन दृश्यों की एकांकी **'व्यवहार'** में कुल चार पात्र हैं–रघुराजसिंह जमींदार, नर्मदाशंकर उनके स्टेट का मैनेजर, एक किसान चूरामन और क्रान्तिचन्द्र जो चूरामन का पुत्र है।

पहला दृश्य प्रातःकाल नगर में स्थित जमींदार रघुराजसिंह के महल की एक बालकनी का है जो सुन्दर और सजा हुआ है। पच्चीस वर्षीय नवयुवक जमींदार रघुराजसिंह बालकनी के एक कोने में खड़ा एक छोटी-सी फैन्सी दूरबीन से पीछे के दरख्तों से परे की कोई वस्तु देख रहा है। उसके नजदीक उसके स्टेट के मैनेजर पैंसठ वर्षीय नर्मदाशंकर खड़ा है। रघुराजसिंह की बहन के विवाह में किसानों को भोज में सपरिवार निमन्त्रित किया गया था। रघुराजसिंह के पूछने पर नर्मदाशंकर बताता है कि मय बाल-बच्चों के पच्चीस हजार से कम किसान नहीं आयेंगे। किन्तु पहले की शादियों में सिर्फ मर्द बुलाये जाते थे, वे भी

चुने हुए घरों के और घर-पीछे एक आदमी। रघुराजसिंह के इस प्रथा को गलत बताने पर नर्मदाशंकर क्षमा माँगते हुए कहता है कि आपकी कार्य-पद्धति सही नहीं है। आपने काम सँभालते ही किसानों का सारा कर्ज माफ कर दिया। भले ही वसूली नहीं होती किन्तु, किसानों पर दबाव रखे बिना जमींदारी नहीं चलती है। आपने बिना नजराना लिये जमीन दी, वह भी गलत था। निमन्त्रण में खर्च बहुत होगा और व्यवहार उतना नहीं मिलेगा। रघुराजसिंह के यह कहने पर कि किसी से व्यवहार नहीं लिया जायगा तब नर्मदाशंकर उन्हें आश्चर्य से देखता है।

दूसरा दृश्य प्रातःकाल गाँव के एक मकान का कोठा है। दीवाल से सटकर एक लाल रंग की जाजम बिछी हुई है जिस पर कुछ किसान लोग बैठे हैं। वहाँ 22-23 वर्षीय एक नवयुवक क्रान्तिचन्द्र जो कालेज का पढ़ा और किसान चूरामन का बेटा है, रोष में तमतमाया बैठा है। उसके चेहरे से क्रूरता टपक रही है। वह किसानों को एकत्र करके जमींदार के विरुद्ध भड़काकर निमन्त्रण में न जाने के लिए लामबन्द कर रहा है। वह जमींदार की उदारता, कर्ज माफ करने, बिना नजराना लिये गरीब किसानों को जमीन देने को जमींदार की लाचारी बताता है। वह कहता है कि जो आपको लूट रहा है, जो आपका खून पी रहा है, उस लुटेरे डाकू के भय से आप निमन्त्रण में जायँगे? आप लोग डरते हैं, किन्तु मैं नहीं डरता। भय से अधिक बुरी वस्तु मैं संसार में और कोई नहीं मानता। मैं ये सब बातें ऊँचे स्वर में कहने के लिए तैयार ही नहीं, स्वयं जमींदार के सम्मुख कहने, उसे लिखकर भेजने के लिए प्रस्तुत हूँ। अन्त में वह सब किसानों को रोककर, किसानों की तरफ से जमींदार को पत्र भेज देता है।

तीसरा दृश्य मध्याह्न काल रघुराजसिंह के महल की बालकनी का है। नर्मदाशंकर हाथ में एक खुली चिट्ठी लिये आता है और उसे रघुराजसिंह के हाथ में दे देता है। रघुराजसिंह चिट्ठी पढ़ते-पढ़ते एकबारगी कुरसी पर बैठ जाते हैं। ग्लानि से उनका सिर झुक जाता है। नर्मदाशंकर एकटक रघुराजसिंह की सारी मुद्रा को देखता है, फिर क्षुब्ध होकर कहता है–"देखा राजा साहब, देखा, आपने इन किसानों की बदमाशी को? आप इन पर प्राण देते हैं...जमींदार की बहन के विवाह-भोज का किसानों द्वारा बहिष्कार!" रघुराजसिंह ने कहा कि किसानों के प्रतिनिधि क्रान्तिचन्द्र ने ठीक तो लिखा है–"भक्षक और भक्ष्य का कैसा व्यवहार?" मेरी गलती थी जो मैं यह समझता था कि किसानों का मैं हित कर सकता हूँ। अब तो मेरे सामने केवल दो विकल्प हैं–सच्चा जमींदार बनूँ या उन्हीं के सच्चे हित में जीवन व्यतीत करूँ। ♦

लक्ष्मी का स्वागत

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' द्वारा लिखित **'लक्ष्मी का स्वागत'** एक मर्मस्पर्शी एवं हृदयद्रावक एकांकी है। इस एकांकी की कथावस्तु पारिवारिक होते हुए भी दूषित सामाजिक मान्यताओं की ओर संकेत करती है और आज के मानव की धन-लिप्सा, स्वार्थ-भावना, हृदयहीनता और क्रूरता का यथार्थ रूप प्रस्तुत करती है। इस एकांकी में एकांकीकार ने दहेज के लोभी उन माता-पिता का चित्रण किया है जो दहेज में काफी धन प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने पुत्र रौशन का पुनर्विवाह उसकी पत्नी सरला की मृत्यु के चौथे दिन ही कर देना चाहते हैं। एकांकी की कथावस्तु इस प्रकार है—

जालन्धर के एक मध्यमवर्गीय परिवार का सदस्य रौशन अपने पुत्र अरुण की बढ़ती बीमारी से बहुत दुःखी है। वह बार-बार अपने बेटे की तड़फड़ाती स्थिति को देखकर घबरा उठता है। उसकी पत्नी को मरे हुए अभी कुछ ही दिन तो हुआ है। उसके दुःख को वह अभी भूल न पाया था कि बच्चा डिफ्थीरिया (गले के संक्रामक रोग) से पीड़ित हो गया। उसकी हालत प्रतिक्षण बिगड़ती जा रही है। वह अपने छोटे भाई भाषी को डॉक्टर बुलाने के लिए भेजता है। बाहर मूसलधार वर्षा, आँधी और ओले जैसे उसके मन को भयभीत कर रहे हैं। रौशन अपने मित्र सुरेन्द्र से कह रहा है—"मेरा दिल डर रहा है सुरेन्द्र, कहीं अपनी माँ की तरह अरुण भी मुझे धोखा न दे जाय?" उसको विह्वल देखकर सुरेन्द्र धैर्य बँधाता हुआ कहता है—"हौसला करो! अभी डॉक्टर आ जायगा।" डॉक्टर आकर बताता है कि बच्चे की हालत ठीक नहीं है। एक इंजेक्शन दे दिया है और गले में पन्द्रह-पन्द्रह मिनट बाद दवाई की दो-चार बूँदें डालते रहें। इसका कोई दूसरा इलाज नहीं है। बस! भगवान् पर भरोसा रखें। उधर माँ भाषी से दरवाजे पर देखने के लिए कहती है, तो भाषी पूछता है, वहाँ कौन है? इस पर माँ कहती है कि वे लोग होंगे जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे। भाषी लड़कीवालों को नीचे बिठाकर माँ के पास आकर बताता है कि उनके साथ एक औरत भी है। रौशन के मित्र सुरेन्द्र से माँ कहती है कि रौशन को समझाकर वह नीचे ले आये। रौशन पुत्र-प्रेम में पागल-सा हो गया है। वह माँ से क्रोध में भरकर कहता है–"उनसे कहो, जहाँ से आये हैं, वहीं चले जायँ। .....मैं नहीं जानता, मैं पागल हूँ या आप। ..... शादी, शादी, शादी! क्या शादी ही दुनिया में सब-कुछ है? घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी

की सूझ रही है।'' इतना होने पर भी रौशन के पिता शगुन लेने को तैयार हैं। उन्होंने पता लगा लिया कि सियालकोट में इनकी बड़ी भारी फर्म है और इनके यहाँ हजारों का लेन-देन है। अन्त में रौशन के पिता शगुन लेकर माँ को बधाई लेने आते हैं। इसी समय अरुण की मौत हो जाती है। रौशन चिढ़कर कहता है, ''हाँ, नाचो, गाओ, खुशियाँ मनाओ।'' पिता के हाथ से हुक्का गिर पड़ता है और मुँह खुला रह जाता है। माँ चीख मारकर सिर थामे धम्म से बैठ जाती है। सुरेन्द्र कहता है·····''माँ जी, जाकर दाने लाओ और दीये का प्रबन्ध करो।'' यहीं पर एकांकी समाप्त हो जाता है।

निश्चय ही **'लक्ष्मी का स्वागत'** एकांकी का कथानक अत्यधिक संवेदनशील और भाव-विभोर करनेवाला है। वास्तव में 'अश्क' जी ने सामाजिक रीति-नीति के मूल में छिपी हुई मानव-मन की निष्ठुरता और हृदयहीनता को ही वाणी दी है। कथानक सुगठित, सशक्त एवं प्रभावशाली बन पड़ा है, जिससे 'अश्क' जी की एकांकी-कला का समृद्ध रूप सामने उपस्थित होता है। ♦

सीमा-रेखा

विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखित **'सीमा-रेखा'** राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत एकांकी है। एकांकीकार का मत है कि जनतन्त्र के वास्तविक स्वरूप में अनेक विसंगतियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इसके कारण राष्ट्रीय हित की निरन्तर हत्या हो रही है। जनता में राष्ट्रीय चेतना का अभाव है। वह आन्दोलन करती है, परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सम्पत्ति की अपार क्षति होती है। एकांकीकार ने इस समस्या को ही अपने एकांकी की कथावस्तु बनाया है। एकांकीकार ने चार भाइयों के रूप में स्वतन्त्र भारत के चार वर्गों के प्रतिनिधियों के द्वन्द्व को प्रस्तुत किया है। विभिन्न घटनाओं के माध्यम से इस बात को भी सिद्ध किया गया है कि जनतन्त्र में सरकार और जनता के बीच कोई सीमा-रेखा नहीं होती। प्रस्तुत एकांकी की कथावस्तु इस प्रकार है—

एकांकी में चार भाइयों का वर्णन है। चारों भाइयों में एक सत्ता पक्ष का नेता है शरतचन्द्र तथा एक विरोधी पक्ष का है—सुभाषचन्द्र। लक्ष्मीचन्द्र एक व्यवसायी है जबकि विजय पुलिस में कप्तान। अरविन्द बड़े भाई लक्ष्मीचन्द्र का पुत्र है। इन चारों भाइयों की पत्नियाँ हैं—तारा, अन्नपूर्णा, सविता और उमा। एक दिन बैंक के पास अन्दोलनकारियों की भीड़ बेकाबू हो जाती है और पुलिस को गोली चलानी पड़ती है। एकांकी का पर्दा उपमन्त्री शरतचन्द्र की बैठक से खुलता है। फोन पर सूचना मिलती है कि पुलिस ने उग्र भीड़ पर गोली चला दी है। इस गोलीबारी में पाँच आदमी मारे गये हैं और बीस घायल हो गये हैं। घायलों को अस्पताल में पहुँचा दिया गया है। शरतचन्द्र की पत्नी इस कार्य को जहाँ अनुचित बताती है, वहीं लक्ष्मीचन्द्र बिल्कुल उचित बताते हैं। पुलिस कप्तान विजय भी अपने कदम को उचित बताता है। वह कहता है कि जनता को कानून अपने हाथ में लेने का कोई अधिकार नहीं है और ऐसे समय पर यही एक रास्ता है।

इसी समय विरोधी पक्ष का जननेता सुभाषचन्द्र आता है। वह भी पुलिस के गोली काण्ड की निन्दा करता है और उपमन्त्री से इस घृणित कार्य के लिए उत्तरदायी पुलिस अधिकारी को निलम्बित करने का अनुरोध करता है। सुभाष और सविता पुनः कहते हैं कि जनतन्त्र का अर्थ ही जनता का राज्य है। तभी यह सूचना मिलती है कि अरविन्द पुलिस की गोली में मारा गया।

लक्ष्मीचन्द्र और उनकी पत्नी अन्नपूर्णा इसे विजय की क्रूरता कहते हैं। विजय को अरविन्द के भीड़ में होने का पता नहीं है। विजय को अपनी गलती का अहसास होता है। विरोधी दल के नेता सुभाषचन्द्र और पुलिस कप्तान विजय फिर उमड़ती हुई भीड़ को नियन्त्रित करने के लिए आगे बढ़ते हैं। विजय गोली चलाने से इन्कार कर देता है जिससे असामाजिक तत्त्वों की भीड़ में ये दोनों भाई कुचलकर मर जाते हैं। सारा वातावरण करुणा से भर जाता है। भीड़ शान्त हो जाती है। तीनों के शव बैठक में लाकर रख दिये जाते हैं। शरतचन्द्र तीनों को देखकर कहता है–''यह देखो, कमरे में तीनों लेटे हैं। कभी नहीं उठेंगे। ये अरविन्द और सुभाष हैं–यह जनता की क्षति है और इधर यह विजय है–यह सरकार की क्षति है।'' अन्नपूर्णा रोकर इसे घर की क्षति बताती है। सविता कहती है—''नहीं जीजी! यह उनकी नहीं, सारे देश की क्षति है, देश क्या हमसे और हम क्या देश से अलग हैं?'' शरत उसकी बात का समर्थन करता है। यहीं पर एकांकी समाप्त हो जाता है।

इस एकांकी की कथावस्तु बड़ी सजीव, विचारोत्तेजक, गतिशील, घटनामयी और मर्मस्पर्शी है। संकलन-त्रय का भरपूर निर्वाह है। सम्पूर्ण कथानक उपमन्त्री शरतचन्द्र के ड्राइंग-रूम में कुछ ही मिनटों में घटित हुआ है। शिल्प की दृष्टि से यह रेडियो-रूपक है, किन्तु इसका अभिनय भी सफलतापूर्वक हो सकता है। ♦

1 डॉ० रामकुमार वर्मा

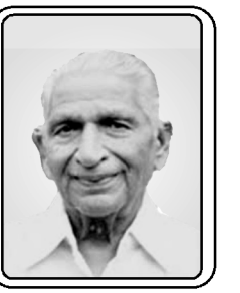

लेखक-एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**—15 नवम्बर, 1905 ई०।
- **जन्म-स्थान**—सागर (म० प्र०)।
- **पिता**—श्री लक्ष्मीप्रसाद वर्मा।
- **माता**—श्रीमती राजरानी देवी।
- **बचपन का उपनाम**—कुमार।
- **मृत्यु**—5 अक्टूबर, 1990 ई०।

जीवन-परिचय—आधुनिक हिन्दी साहित्य के सुप्रसिद्ध एकांकीकार डॉ0 रामकुमार वर्मा का जन्म मध्य प्रदेश के सागर जिले में 15 नवम्बर, 1905 ई0 को हुआ था। आपके पिता श्री लक्ष्मीप्रसाद वर्मा मध्य प्रदेश में ही डिप्टी कलेक्टर थे। वर्मा जी को प्रारम्भिक शिक्षा इनकी माता श्रीमती राजरानी देवी ने अपने घर पर ही दी, जो उस समय की हिन्दी कवयित्रियों में विशेष स्थान रखती थीं। बचपन में इन्हें 'कुमार' के नाम से पुकारा जाता था। 'कुमार' में प्रारम्भ से ही प्रतिभा के स्पष्ट चिह्न दिखायी देने लगे थे। सन् 1922 में दसवीं कक्षा में पहुँचे और सभी परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करते हुए रॉबर्ट्सन कॉलेज, जबलपुर से बी0 ए0 तथा सन् 1929 में प्रयाग विश्वविद्यालय से आपने हिन्दी में एम0 ए0 की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया। आपको एक प्रतिभाशाली छात्र के रूप में प्रयाग विश्वविद्यालय ने 'हॉलैण्ड मेडल' से सम्मानित किया और विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक पद पर नियुक्ति कर दी। सन् 1966 ई0 में आपने हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद से अवकाश ग्रहण किया। आप रूस सरकार के विशेष आमन्त्रण पर मास्को विश्वविद्यालय में लगभग एक वर्ष तक शिक्षण-कार्य भी किया था।

आपको नागपुर विश्वविद्यालय की ओर से 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' विषय पर पी-एच0 डी0 की उपाधि दी गयी। 'चित्ररेखा' काव्य-संग्रह पर देव पुरस्कार, 'सप्त किरण' एकांकी-संग्रह पर 'अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन पुरस्कार', हिन्दी साहित्य सम्मेलन की ओर से 'साहित्यवाचस्पति' उपाधि, मध्य प्रदेश शासन परिषद् से 'विजय पर्व' नाटक पर प्रथम पुरस्कार तथा भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण से आपको सम्मानित किया गया। आपका निधन 5 अक्टूबर, सन् 1990 ई0 को प्रयाग में हुआ।

कृतियाँ—वर्मा जी की रचनाएँ सन् 1922 से प्रारम्भ हुई थीं। आपके प्रमुख एकांकी-संग्रह अग्रलिखित हैं—पृथ्वीराज की आँखें (सन् 1938), रेशमी टाई (1941 ई0), रूप रंग (1951 ई0), चारुमित्रा, कौमुदी महोत्सव, चार ऐतिहासिक एकांकी (1950 ई0), दीपदान, रजत रश्मि, विभूति, रिमझिम, पाञ्चजन्य, बापू, इन्द्रधनुष आदि। 'बादल की मृत्यु' आपका सर्वप्रथम एकांकी नाटक था। इसके बाद आपने क्रमशः 'दस मिनट', 'नहीं का रहस्य', 'चम्पक' और 'ऐक्ट्रेस' आदि एकांकी नाटकों की रचना की और इसके बाद आपका एकांकीकार व्यक्तित्व आधुनिक हिन्दी नाट्य साहित्य का प्रकाश-स्तम्भ हो गया।

वर्मा जी ने 70 से अधिक पुस्तकों की रचना की है। आपकी अन्य कृतियाँ इस प्रकार हैं—

वीर हम्मीर (काव्य–सन् 1922 ई0), चित्तौड़ की चिता (काव्य–सन् 1929 ई0), अंजलि (काव्य–सन् 1930 ई0), चित्ररेखा (कविता–सन् 1936 ई0), जौहर (कविता-संग्रह–सन् 1951 ई0), एकलव्य, उत्तरायण, रूपराशि, चन्द्रकिरण आदि।

साहित्यिक अवदान–'रेशमी टाई' के उपरान्त डॉ0 वर्मा के कृतित्व में एक विशेष धारा ऐतिहासिक एकांकियों की विकसित हुई, जिसमें डॉ0 रामकुमार वर्मा एक ऐसे आदर्शवादी कलाकार के रूप में नाट्य-जगत् के सामने आये, जिसमें उनके सांस्कृतिक और साहित्यिक मान्यताओं का सुन्दरतम समन्वय स्थापित हुआ है। आपने सामाजिक, वैज्ञानिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक सभी प्रकार के एकांकियों पर लेखनी चलायी है। अन्य विधाओं की अपेक्षा एकांकी के क्षेत्र में आपको पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है; तभी तो आधुनिक हिन्दी एकांकी के आप जनक कहे जाते हैं। एकांकी की दिशा में आप पर इब्सन, मैटरलिंक, चेखव आदि का विशेष प्रभाव पड़ा है। आपके एकांकियों की भाषा सरल तथा नाटकीयता से ओतप्रोत है। रंगमंच की दृष्टि से आपकी एकांकियाँ पूर्ण सफल हैं। ♦

दीपदान

पात्र-परिचय

कुँवर उदयसिंह	:	चित्तौड़ के स्वर्गीय महाराणा साँगा का सबसे छोटा पुत्र। राज्य का उत्तराधिकारी। आयु 14 वर्ष।
चन्दन	:	धाय माँ पन्ना का पुत्र। आयु 13 वर्ष।
बनवीर	:	महाराणा साँगा के भाई पृथ्वीराज का दासी-पुत्र। आयु 32 वर्ष।
कीरत	:	जूठी पत्तल उठानेवाला। आयु 40 वर्ष।
पन्ना	:	कुँवर उदयसिंह का संरक्षण करनेवाली धाय। चन्दन की माँ। आयु 30 वर्ष।
सोना	:	रावल सरूपसिंह की अत्यन्त रूपवती लड़की। कुँवर उदयसिंह के साथ खेलनेवाली। आयु 16 वर्ष।
सामली	:	अन्तःपुर की परिचारिका। आयु 28 वर्ष।

काल

सन् 1536 ई0

समय-रात्रि का दूसरा पहर

स्थान

कुँवर उदयसिंह का कक्ष, चित्तौड़

(कक्ष में पूरी सजावट है। दरवाजों पर रेशमी परदे पड़े हैं। एक पार्श्व में उदयसिंह की शय्या है। सिरहाने पन्ना के बैठने का स्थान है।)

(नेपथ्य में नारियों की सम्मिलित नृत्य-ध्वनि और गान जो धीरे-धीरे हल्का होता जाता है।)

उदयसिंह : (दौड़ता हुआ आता है, पुकारता है।) धाय माँ, धाय माँ!

पन्ना : (भीतर से आती हुई) क्या है, कुँवर जी! (देखकर) अरे, रात हो गयी और तुमने अभी तक तलवार म्यान में नहीं रखी?

उदयसिंह : धाय माँ, देखो न कितनी सुन्दर-सुन्दर लड़कियाँ नाच रही हैं। गीत गाती हुई तुलजा भवानी के सामने नाच रही हैं। चलो देखो न।

पन्ना : मैं नहीं देख सकूँगी लाल!

उदयसिंह : नहीं धाय माँ, थोड़ी देर के लिए चलो न!

पन्ना : नहीं कुँवर जी, मुझे नाच देखना अच्छा नहीं लगता।

उदयसिंह : क्यों नहीं अच्छा लगता? मैं तो नाचनेवाली लड़कियों को बड़ी देर तक देखता रहा और वे भी तो मुझे बड़ी देर तक देखती रहीं, मैं कितना अच्छा हूँ!

पन्ना : बहुत अच्छे हो। तुम तो चित्तौड़ के सूरज हो। महाराणा साँगा जी के छोटे कुँवर जी। सूरज की तरह तुम्हारा उदय हुआ है। तभी तो तुम्हारा नाम कुँवर जी उदयसिंह रखा गया है।

उदयसिंह : (हँसकर) अच्छा, यह बात है! पर क्या रात में भी सूरज का उदय होता है? मैं तो रात में भी हँसता-खेलता रहता हूँ!

पन्ना : दिन में तो चित्तौड़ के सूरज हो, कुँवर जी! और रात में तुम राजवंश के दीपक हो! महाराणा साँगा के कुल-दीपक!

उदयसिंह : कुल-दीपक! कहीं तुम मुझे दान न कर देना, धाय माँ! वे नाचनेवाली लड़कियाँ तुलजा भवानी की पूजा में दीपदान करके ही नाच रही हैं। वे दीपक छोटे-से कुण्ड में कैसे नाचते हैं, (मचले हुए स्वर में) चलो न धाय माँ! तुम उनका दीपदान देख लो। जिस तरह उनके दीपक नाचते हैं उसी तरह वे भी नाच रही हैं।

पन्ना : मैं इस समय कुछ भी नहीं देखूँगी। कुँवर जी!

उदयसिंह : (रूठकर) तो जाओ, मैं भी नहीं देखूँगा। मैं उदयसिंह भी नहीं बनूँगा और कुल-दीपक भी नहीं। कुछ नहीं बनूँगा।

पन्ना : रूठ गये। कुँवर जी, रूठने से राजवंश नहीं चलते। देखो, तुम्हारे कपड़ों पर धूल छा रही है। दिन भर तुम तलवार का खेल खेलते रहे हो। थक गये होगे। जाओ, सो जाओ। मैं तुम्हारी तलवार अलग रख दूँगी।

उदयसिंह : (रूठे हुए स्वर में) मैं तलवार के साथ ही सो जाऊँगा।

पन्ना : अभी वह समय नहीं आया, कुँवर जी! चित्तौड़ की रक्षा में तुम्हें तलवार के साथ ही सोना पड़ेगा।

उदयसिंह : (रूखे स्वर में) तुम्हें तलवार से डर लगता है?

पन्ना : तलवार से डर! चित्तौड़ में तलवार से कोई नहीं डरता, कुँवर जी! जैसे लता में फूल खिलते हैं वैसे ही यहाँ वीरों के हाथों में तलवार खिलती है।

उदयसिंह : (उसी तरह रूखे स्वर में) अब मेरा मन बहलाने लगीं। तुम नाच देखने नहीं चलती, तो मैं ही अकेला चला जाऊँगा। मैं जाता हूँ। (जाने को उद्यत होता है)।

पन्ना : नहीं कुँवर जी! तुम कभी रात में अकेले नहीं जाओगे। चारों तरफ जहरीले सर्प घूम रहे हैं। किसी समय भी तुम्हें डस सकते हैं।

उदयसिंह : सर्प! कैसे सर्प!

पन्ना : तुम नहीं समझोगे, कुँवर जी! जाकर सो जाओ। थक गये होगे। भोजन के लिए मैं जगा लूँगी।

उदयसिंह : नहीं माँ, आज न भोजन करूँगा और न अपनी शय्या पर ही सोऊँगा। (प्रस्थान के लिए उद्यत)

पन्ना : (रोकते हुए) सुनो, सुनो कुँवर जी!

(उदयसिंह का प्रस्थान)

पन्ना : चले गये! कुँवर का रूठना भी मुझे अच्छा लगता है। मना लूँगी। नाच, गान, दीपदान इसी से चित्तौड़ की रक्षा होगी? चित्तौड़ में यह बहुत हो चुका। और अब तो बनवीर का राज्य है।

(नूपुर-नाद करते हुए एक किशोरी का प्रवेश)

सोना : धाय माँ को प्रणाम।

पन्ना : कौन?

सोना : मैं हूँ, सोना। गवल सरूपसिंह की लड़की। कुँवर जी कहाँ हैं?

पन्ना : वे थक गये हैं। सोना चाहते हैं।

सोना : सोना चाहते हैं। तो मैं भी तो सोना हूँ।

(अट्टहास)

पन्ना : चुप रह सोना! कुँवर जी रूठकर चले गये हैं। तुम लोग कुँवर को नाच-गाने की ओर खींचना चाहती हो।

सोना : क्या तुलजा भवानी के सामने नाचना कोई बुरी बात है! आज हम लोगों ने दीपदान किया और मनभर नाचा, यों (नाचती है) कुँवर भी तो बड़ी देर तक हमारा नाच देखते रहे। मैं भी उनको देखकर बहुत नाची। उनको हमारा नाच बहुत अच्छा लगा! मुझे भी उनको देखकर बहुत अच्छा लगा! देखो, पैरों की यह ताल (नूपुर की झनकार)।

पन्ना : बस, बस, सोना। अगर तू रावल जी की लड़की न होती तो .....।

सोना : कटार भोंक देतीं! कटार! (अट्टहास करती है) धाय माँ, तुमने उदयसिंह के सामने तो अपने पुत्र चन्दन को भी भुला दिया।

पन्ना : रहने दे। जानती नहीं बनवीर का राज्य है।

सोना : ओहो, बनवीर! उन्हें श्री महाराज बनवीर कहो। हमारे लिये वे एक रेशम की झूल लाये थे। उसे सिर से ओढ़कर नाचने से ऐसा लगता था, जैसे मकड़ी के जाले के आर-पार चन्द्रमा की किरणें थिरक रही हैं। हाँ .....

पन्ना : बहुत नाचती हो। बनवीर की तुम पर बड़ी कृपा है।

सोना : द्रौपदी के चीर की तरह! आज प्रातःकाल उन्होंने मुझे बुलाया और कहा .....धाय माँ! तुम बुरा तो नहीं मानेगी?

पन्ना : मैं! क्यों बुरा मानूँगी?

सोना : उन्होंने कहा, महल में धाय माँ अरावली पहाड़ बनकर बैठ गयी हैं। अरावली पहाड़! (हँसती है) तो तुम लोग बनास नदी बनकर बहो न! खूब नाचो, गाओ। यों आज कोई उत्सव का दिन नहीं था, फिर भी उन्होंने कहा मेरे बनवाये हुए मयूर-पक्ष कुण्ड में दीपदान करो। मालूम हो, जैसे मेघ पानी-पानी हो गये हों और बिजलियाँ टुकड़े-टुकड़े हो गयी हों।

पन्ना : बड़ी उमंग में हो आज!

सोना : दीपकों के साथ उमंग भी लौ देने लगी है, धाय माँ! सारा जीवन ही एक दीपावली का त्योहार बन गया है।

पन्ना : तो यही त्योहार मना रही हो तुम?

सोना : मैं ही क्या, सारे नगर-निवासी यह त्योहार मना रहे हैं। नहीं मना रही हो तो तुम! धाय माँ! पहाड़ बनने से क्या होगा? राजमहल पर बोझ बनकर रह जाओगी बोझ, और नदी बनो तो तुम्हारा बहता हुआ बोझ, पत्थर भी अपने सिर पर धारण करेंगे, आनन्द और मंगल तुम्हारे किनारे होंगे, जीवन का प्रवाह होगा, उमंगों की लहरें होंगी जो उठने में गीत गायेंगी, गिरने में नाच नाचेंगी।

पन्ना : बनवीर के अनुग्रह ने तुम्हें पागल बना दिया है सोना!

सोना : धाय माँ! पागल कौन नहीं? महाराजा विक्रमादित्य अपने सात हजार पहलवानों के साथ पागल हैं। मल्ल-क्रीड़ा ही तो उनका पागलपन है। महाराज बनवीर, महाराणा विक्रमादित्य की आत्मीयता में पागल हैं। सारा नगर आज के त्योहार में पागल है। तुम कुँवर जी उदयसिंह के स्नेह में पागल हो और मैं? (हँसकर) मेरी कुछ न पूछो, धाय माँ मैं तो इन सबके पागलपन में पागल हूँ। तुम चाहे जो कहो! हाँ, तो कुँवर जी उदयसिंह कहाँ हैं?

पन्ना : कुँवर उदयसिंह को छोड़ो, सोना! वे बहुत थक गये हैं। अब सो रहे होंगे। तुम जाओ। यहाँ कहीं तुम्हारा पागलपन कम न हो जाय।

सोना : मेरा पागलपन? धाय माँ, पागलपन कहीं कम होता है? पहाड़ बढ़कर कभी छोटे हुए हैं? नदियाँ आगे बढ़कर कभी लौटी हैं? फूल खिलने के बाद कभी कली बने हैं? सब आगे बढ़ते हैं। नहीं बढ़ती हो तो सिर्फ तुम। सदा एक-सी।

पन्ना : सोना! मुझे किसी से ईर्ष्या नहीं है। मैं जैसी हूँ। राजसेवा में जीवन जा रहा है—यही मेरे भाग्य की बात है।

सोना : भाग्य! भाग्य तो सबके होता है, धाय माँ! नूपुर मेरे पैरों में पड़े हैं तो इनका भी भाग्य है। मेरे पैरों की गति में गीत गाते हैं, तो वह भाग्य है, मेरे आगमन का सन्देश पहले ही पहुँचा देते हैं तो वह भी इनका भाग्य

है। भाग्य तो सबके होता है, धाय माँ! तुम नगर के उत्सव में भाग नहीं ले रही हो, न लो। महाराज बनवीर का साथ नहीं दे रही हो, न दो! मैं कौन होती हूँ बीच में बोलनेवाली!

पन्ना : तो क्या मेरे उत्सव में जाने और न जाने का सम्बन्ध बनवीर की इच्छा से है?

सोना : कुँवर जी को ही भेज देतीं।

पन्ना : कैसे भेज देती? इतने आदमियों के बीच उसे कैसे भेज देती? महाराणा साँगा के वंश के एक वही तो उजाले हैं। महाराज रतनसिंह तीन ही वर्ष राज करके सूर्यलोक चले गये। विक्रमादित्य भी बनवीर की कूटनीति से अधिक दिनों तक .....।

सोना : धाय माँ, तुम विद्रोह की बात करती हो।

पन्ना : आँधी में आग की लपटें तेज ही होती हैं, सोना! तुम भी उसी आँधी में लड़खड़ाकर गिरोगी। तुम्हारे सारे नूपुर बिखर जायँगे। न जाने किस हवा का झोंका तुम्हारे इन गीत की लहरों को निगल जायगा। चित्तौड़ रास-रंग की भूमि नहीं है, जौहर की भूमि है। यहाँ आग की लपटें नाचती हैं, सोना-जैसी रावल की लड़कियाँ नहीं।

सोना : (क्रोध से चीखकर) धाय माँ!

पन्ना : तोड़ो ये नूपुर! यहाँ का त्योहार आत्म-बलिदान है। यहाँ का गीत मातृभूमि की वेदना का गीत है। उसे सुनो और समझो।

सोना : (शान्त स्वर में) समझ लिया, धाय माँ!

पन्ना : तो यहाँ से जाओ।

(सोना का धीरे-धीरे प्रस्थान। उनके नूपुर धीरे-धीरे बजते हुए दूर तक सुन पड़ते हैं।)

पन्ना : अँधेरी रात! यह रास-रंग!! नगर के सब लोगों का जमाव!!! कुँवर जी उदयसिंह के लिए बुलावा!!! यह सब क्या है?

चन्दन : (दूर से पुकारते हुए) माँ! माँ!!

पन्ना : क्या, मेरे लाल?

चन्दन : कुँवर जी कहाँ हैं, माँ।

पन्ना : रूठकर सो गये हैं?

चन्दन : उन्होंने भोजन कर लिया?

पन्ना : नहीं। तुम भोजन कर लो। मैं थोड़ी देर बाद उन्हें उठाकर बहलाकर भोजन करा दूँगी।

चन्दन : मुझे अकेले भोजन करना अच्छा न लगेगा, माँ!

पन्ना : भोजन कर लो मेरे चन्दन! मेरे लाल! सज्जा ने तुम्हारे लिए अच्छा भोजन बनाया है। तुम्हें अच्छी-अच्छी बातें सुनाती हुई भोजन करा देगी। मैं भी अभी आती हूँ। तुम्हारी माला टूट गयी थी उसी को ठीक कर रही हूँ। बस, थोड़े दाने और रह गये हैं।

चन्दन : माँ, कल कुँवर जी की माला को ठीक कर देना। वह भी टूट रही है। सोना ने उसे पकड़कर खींच दिया था।

पन्ना : अच्छा चन्दन! वह भी ठीक कर दूँगी।

(चन्दन का प्रस्थान)

(एकाएक घर की कुछ चीजों के गिरने की धमक! शीघ्रता से सामली का प्रवेश)

सामली : (चीखकर पुकारती हुई) धाय माँ, धाय माँ!

पन्ना : कौन, कौन, सामली?

सामली : (बिलखते हुए) धाय माँ, धाय माँ। कुँवर जी कहाँ हैं? कुँवर जी कहाँ हैं?

पन्ना : क्यों, कुँवर जी को क्या हुआ?

सामली : उनका जीवन संकट में है।

पन्ना : कहाँ! कैसे! यह तुम क्या कह रही हो?

सामली : उनका जीवन बचाओ, धाय माँ!

पन्ना : (चीखकर) सामली! कहाँ हैं कुँवर जी?

(अन्दर की तरफ भागती है)

सामली : (बिलखते हुए) हाय! सर्वनाश हो रहा है। क्या मेवाड़ को ऐसे ही दिन देखने थे? हाय! क्या हो रहा है? तुलजा भवानी! तुम चित्तौड़ की देवी हो। कैसे कहूँ कि तुम्हारे त्रिशूल में अब शक्ति नहीं रही। मेवाड़ का भाग्य .....

पन्ना : (फिर प्रवेश कर) सो रहा है। मेरा कुँवर सो रहा है। कहीं तो कुछ नहीं हुआ। कुँवर जी रूठ गये थे, वे तलवार लिये हुए भूमि पर ही सो गये। मेरे कुँवर जी को कुछ नहीं हुआ।

सामली : कुँवर जी अच्छे हैं। तुलजा भवानी कुशल करें। पर धाय माँ। महाराणा विक्रमादित्य जी की हत्या हो गयी।

पन्ना : (चीखकर) महाराणा की हत्या हो गयी? किसने की?

सामली : बनवीर ने। महाराणा सो रहे थे। उसने अवसर पाकर उनकी छाती में तलवार भोंक दी।

पन्ना : (चीखकर) हाय! महाराणा विक्रमादित्य जी! (सिसकने लगती है।)

सामली : बनवीर ने नगर भर में आज नाच-गाने का त्योहार मनवाया जिससे नगर-निवासियों का ध्यान नाच-रंग में ही रहे। मौका देखकर वह राजमहल गया। अन्तःपुर में वह आता-जाता था। किसी ने रोका नहीं, उसने महाराणा के कमरे में जाकर उनकी हत्या कर दी। (सिसकियाँ लेने लगती है।)

पन्ना : (स्थिर होकर) आज कुसमय रास-रंग की बात सुनकर मेरे मन में शंका हुई थी, इसलिए मैंने कुँवर जी को वहाँ जाने से रोक दिया था। सम्भव था कुँवर जी वहाँ जाते और बनवीर अपने सहायकों से कोई काण्ड रच देता।

सामली : इसलिए मैं दौड़ी हूँ धाय माँ! लोगों ने बनवीर को कहते सुना है कि वह कुँवर जी उदयसिंह को भी सिंहासन का अधिकारी समझकर जीवित रहने नहीं देगा। वह निष्कण्टक राज करेगा, धाय माँ।

पन्ना : विलासी और अत्याचारी राजा कभी निष्कण्टक राज्य नहीं कर सकता।

सामली : लेकिन रक्त से भींगी तलवार लेकर वह सीना ताने हुए अपने महल में गया है।

पन्ना : लोगों ने उसे पकड़ा नहीं? सैनिक चुपचाप देखते ही रहे?

सामली : सैनिकों को उसने अपनी तरफ मिला लिया है। लोग उससे डरते हैं। महाराणा विक्रमादित्य का राज्य भी तो ऐसा नहीं था कि लोग उनसे प्रेम रखते। उनके पहलवानों की सहायता से राज्य नहीं चल सकता। सभी सामन्त महाराणा से असन्तुष्ट थे।

पन्ना : अब क्या होगा?

सामली : थोड़ी देर बाद ही वह कुँवर जी को मारने आयेगा, आज की रात बहुत अशुभ है। आज की रात में ही वह अपने को पूरा महाराणा बना लेना चाहता है। किसी तरह से भी हो कुँवर जी की रक्षा होनी चाहिए, धाय माँ!

पन्ना : कुँवर जी की रक्षा.....(सोचते हुए) कुँवर जी की रक्षा! अवश्य होगी.....अवश्य होगी। अब मेवाड़ का उत्तराधिकारी एक यही तो राजपूत रक्त है। दासी-पुत्र बनवीर को चित्तौड़ सहन नहीं कर सकेगा।

सामली : यह तो आगे की बात है पर तुम कुँवर जी की रक्षा किस तरह करोगी?

पन्ना : मैं? इस अँधेरी रात में ही उसे लेकर कुम्भलगढ़ भाग जाऊँगी।

सामली : और चन्दन कहाँ रहेगा?

पन्ना : जहाँ भगवती तुलजा उसे रखेगी। मेरे महाराणा का नमक मेरे रक्त से भी महान् है। नमक से रक्त बनता है, रक्त से नमक नहीं।

सामली : धन्य हो, धाय माँ! पर तुम नहीं भाग सकोगी। तुम महलों से निकल भी नहीं सकोगी। आते समय मैंने देखा था कि बनवीर के सैनिक तुम्हारा महल घेरने को आ रहे थे। एक ओर से तो तुम्हारा महल घिर ही चुका था।

पन्ना : हा! भगवान् एकलिंग! अब क्या होगा?

सामली : जैसे भी हो कुँवर जी की रक्षा तुम्हें करनी ही है।

पन्ना : मुझे सैनिकों की सहायता नहीं मिल सकती?

सामली : सैनिक तो उसके हैं। धाय माँ!

पन्ना : और सामन्त?

सामली : उनमें इतना साहस नहीं है।

पन्ना : (जोर से) दरवाजे पर कौन है?

(कीरत का प्रवेश)

कीरत : अन्नदाता! कीरत बारी हौं। धाय माँ के चरन लागौं।

पन्ना : कीरत! तुम हो? बाहर तो कोई नहीं है?

कीरत : अन्नदाता? बाहर सिपाहियों का डेरा लग रहा है। जान नहीं पड़ता अन्नदाता कि आधी रात को ये क्या हो रहा है। पेड़े में किसी का भी पैसारा नहीं हो पाता। मैं तो चरन-सेवक हूँ, इससे कोई कुछ बोला नहीं।

पन्ना : तो तुम बेखटके चले आये?

कीरत : अन्नदाता, मैं तो जूठी पत्तल उठाता हूँ, कोई माल-मत्ता तो मेरे पास नहीं। टोकरी है और उसमें पत्ते हैं। कुँवर जी जू ने ब्यालू कर ली धाय माँ? मैं जूठन पा लूँ?

पन्ना : नहीं।

कीरत : कुँवर जू जुग-जुग जियें धाय माँ! जब से कुँवर जू बूँदी से आये हैं तब से सगर महल में उजियारा फैल गया है। राणा विक्रमादित्य जब हर-भजन करेंगे तो धाय माँ अपना चौंर छतर कुँवर जू को ही तो सौंपेंगे। सच जानो धाय माँ, मैं तो उनके लिए अपनी जान तक हाजिर कर सकता हूँ। धाय माँ कुछ सोच रही हैं?

पन्ना : (चौंककर) ऐं! हाँ, मैं सोच रही हूँ। (सामली से) तुम बाहर जाकर देखो सिपाही कहाँ-कहाँ खड़े हैं और कितने सिपाही हैं।

सामली : बहुत अच्छा, धाय माँ! मैं जाती हूँ।

(प्रस्थान)

पन्ना : तो कीरत! तुम कुँवर जी को बहुत प्यार करते हो?

कीरत : अन्नदाता! प्यार कहने में जबान पर कैसे आवे? वो तो दिल की बात है। मौके पै ही देखा जाता है और कहने को तो मैं कह चुका हूँ कि उनके लिए अपनी जान तक हाजिर कर सकता हूँ।

पन्ना : तो वह मौका आ गया है, कीरत।

कीरत : मौका! कैसा मौका?

पन्ना : कुँवर जी को बचाने का।

कीरत : कौन से सिर पै भैरू बाबा की आँख चढ़ी है जो कुँवर जी का बाल बाँका कर सके? और कीरत के रहते? धाय माँ, हँसी तो नहीं कर रही हैं? अन्नदाता।

पन्ना : नहीं कीरत, हँसी का समय नहीं है। कुँवर जी के प्राण संकट में हैं।

कीरत : हुकुम दें, अन्नदाता।

पन्ना : अच्छा तो सुनो। तुम बारी हो, तुम्हें बाहर जाने से कोई नहीं रोकेगा। तुम तो टोकरी में जूठी पत्तल उठा के जाते ही हो।

कीरत : ठीक कहती हैं, अन्नदाता। आते वक्त भी किसी ने नहीं रोका।

पन्ना : तो तुम कुँवर जी को टोकरी में लिटाकर उन पर गीली पत्तलें डालकर महल से बाहर निकल जाओ।

कीरत : वाह! अन्नदाता ने खूब सोचा! मैं ऐसे निकल जाऊँगा कि सिपाही लोग मुँह देखते ही रह जायँगे। तो कुँवर जी कहाँ हैं?

पन्ना : सो रहे हैं। आज भूमि पर ही सो गये। उन्हें धीरे से उठाकर अपनी टोकरी में सुला लेना। वे जागने न पायें।

कीरत : बहुत अच्छा अन्नदाता! कुँवर जी कहाँ हैं?

पन्ना : मेरे कमरे में नीचे ही सो गये हैं। तुम्हारी टोकरी तो काफी बड़ी है।

कीरत : अन्नदाता! आपके जस ने ही तो मेरी टोकरी बड़ी कर दी है। सारे राजमहल की पत्तलें छोटी टोकरी में कैसे आ सकती हैं? और अन्नदाता! आज तो बनवीर के साथ बहुत सामन्तों ने खाया है। मैंने भी सोचा आज बड़ी टोकरी ले चलूँ सो वो ही लाया हूँ।

पन्ना : और हाँ, कुँवर जी को लेकर तुम बेरिस नदी के किनारे मिलना! वहाँ जहाँ श्मशान है।

कीरत : ठीक है अन्नदाता! वहीं मिलूँगा। वहाँ मुझ पै किसी भी आदमी की नजर न पड़ेगी।

पन्ना : तो जाओ कीरत! आज तुम-जैसे एक छोटे आदमी ने चित्तौड़ के मुकुट को सँभाला है। एक तिनके ने राजसिंहासन को सहारा दिया है। तुम धन्य हो!

कीरत : अन्नदाता! धन्य तो आप हैं कि मुझको आपने ऐसी सेवा करने का काम सौंपा है। तो मैं चलूँ?

(सामली का प्रवेश)

सामली : धाय माँ! महल चारों तरफ से सिपाहियों से घिर गया। उत्तर की तरफ ही सात सिपाही हैं। बाकी तीनों तरफ बीस-बीस सिपाही पहरा दे रहे हैं। शायद उत्तर की तरफ के सिपाही बनवीर को लेने गये हैं।

पन्ना : कोई चिन्ता की बात नहीं, सामली! तू यहीं ठहरना मैं अभी आती हूँ। (कीरत से) चलो कीरत!

(दोनों का प्रस्थान)

(पन्ना का प्रवेश)

पन्ना : अब ठीक है। कुँवर जी की रक्षा हो गयी।

सामली : पर एक बात है, धाय माँ!

पन्ना : क्या?

सामली : बनवीर यहाँ जरूर आयेंगे। वे तुम्हारे महल में कुँवर जी की खोज करेंगे। जब वे कुँवर जी को न पायेंगे और तुमसे पूछेंगे तो तुम क्या उत्तर दोगी?

पन्ना : कह दूँगी कि मैं नहीं जानती।

सामली : इससे वे नहीं मानेंगे। क्रोध में आकर अगर उन्होंने तुम्हारे ऊपर तलवार चला दी तो कुँवर जी तुम्हारे बिना कैसे जियेंगे?

पन्ना : मुझे उसकी चिन्ता नहीं है, सामली!

सामली : पर चिन्ता कुँवर जी की है। तुम्हारे बिना वे भी तो जीवित नहीं रहेंगे। फिर तुम्हारा बलिदान चित्तौड़ के किस काम आयेगा?

पन्ना : सचमुच कुँवर जी मेरे बिना नहीं जियेंगे। थोड़ी-सी बात पर तो रूठ जाते हैं। मुझे न पाकर उनका क्या हाल होगा?

सामली : किसी तरह बनवीर को धोखा नहीं दे सकती?

पन्ना : दे सकती हूँ?

सामली : किस तरह?

पन्ना : कुँवर जी की शय्या पर किसी और को सुला दूँगी। वह क्रोध में अन्धा रहेगा ही। पहचान भी नहीं सकेगा कि वह कौन सोया है?

सामली : तो कुँवर जी की शय्या पर किसे सुला दोगी?

पन्ना : किसे सुला दूँगी? (सोचकर) सामली मेरे हृदय पर वज्र गिर रहा है। मेरी आँखों में प्रलय का बादल घुमड़ रहा है। मेरे शरीर के एक-एक रोम पर बिजली तड़प रही है।

सामली : धाय माँ सँभल जाओ! ऐसी बातें न कहो। कुँवर जी की शय्या पर .....

पन्ना : सुला दूँगी। उसी को! सुला दूँगी जो मेरी आँखों का तारा है.....चन्दन.....चन्दन को सुला दूँगी सामली! (सिसकियाँ) चन्दन को सुला दूँगी। उस नन्हें-से लाल को हत्यारे की तलवार के नीचे रख दूँगी।

सामली : धाय माँ! ऐसा मत कहो। ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी।

(प्रस्थान)

पन्ना : चली गयी। कहती है, ऐसा मैं नहीं सुन सकूँगी। जो मुझे करना है, वह सामली सुन भी न सकेगी। भवानी! तुमने मेरे हृदय को कैसा कर दिया! मुझे बल दो कि मैं राजवंश की रक्षा में अपना रक्त दे सकूँ। अपने लाल को दे सकूँ। यही राजपूतानी का व्रत है। यही राजपूतानी की मर्यादा है। यही राजपूतानी का धर्म है। मेरा हृदय वज्र का बना दो! माता के हृदय के स्थान पर पत्थर बना दो जिससे ममता के स्रोत बन्द हो जायँ। भवानी! मैं चित्तौड़ की सच्ची नारी बनूँ। (नेपथ्य में चन्दन का स्वर) माँ!.....माँ!.....माँ!

(चन्दन का प्रवेश)

चन्दन : माँ देखो, मेरे पैर में चोट लग गयी। यह रक्त निकल रहा है।

पन्ना : कहाँ रक्त निकल रहा है? लाओ देखूँ मेरे लाल! ओहो! अँगूठे में यह चोट कैसे लगी? रक्त निकल रहा है? कितना रक्त निकल रहा है! लाओ इसे बाँध दूँ। (अपनी साड़ी से कपड़े का टुकड़ा फाड़ती है।) पैर सीधा करो! हाँ ठीक .....इसे बाँध देती हूँ। (बाँधते हुए) यह चोट कैसे लगी, लाल?

चन्दन : मैं जैसे ही भोजन करके उठा माँ, सज्जा ने कहा कि महल के चारों तरफ सिपाही इकट्ठे हो रहे हैं। मैं देखने के लिए ऊपर के झरोखे में चढ़ गया। अँधेरे में कुछ दिखायी नहीं दिया। जैसे ही मैं नीचे कूदा एक टूटा हुआ शीशा अँधेरे में चुभ गया। कोई बात नहीं है माँ, रक्त तो निकला ही करता है। पर ये सिपाही महल के चारों तरफ क्यों इकट्ठे हो रहे हैं।

पन्ना : आज नाच-रंग का दिन है न! वही सब देखने के लिए आये होंगे या फिर सोना ने उन्हें बुलाया होगा। वह नीचे नाच रही होगी।

चन्दन : माँ! सोना अच्छी लड़की नहीं है। मैं कल उससे कहूँगा माँ कि कुँवर जी को अपना नाच न दिखाया करे। उनका मन आखेट करने में नहीं लगता।

पन्ना : मैं भी उसे समझा दूँगी, चन्दन!

चन्दन : कुँवर जी कहाँ हैं, माँ! आज भोजन में भी साथ नहीं चले।

पन्ना : कहीं सो रहे हैं।

चन्दन : तब से सो रहे हैं? माँ, कुँवर जी को ज्यादा नींद क्यों आती है? मैं देखूँ कहाँ सो रहे हैं।

पन्ना : बुरा मानकर कहीं सो रहे होंगे।

चन्दन : सोना ने ही उन्हें बुरा मानना सिखला दिया माँ! नहीं तो कुँवर जी पहले कभी बुरा नहीं मानते थे। खेल-खेल में भी बुरा नहीं मानते थे। साथ खेलते थे, साथ खाते थे। आज अकेले कुछ खाया भी नहीं गया माँ!

पन्ना : तो चलो चन्दन! मैं तुम्हें जी भर के खिला दूँ।

चन्दन : अब कुँवर जी के साथ ही कल खाऊँगा, माँ कल हम दोनों साथ बैठेंगे .....तुम प्रेम से परोस-परोसकर खिलाना। कल खूब खाऊँगा, माँ! कुँवर जी से भी ज्यादा। कहते हैं कि मैं चन्दन से ज्यादा खाता हूँ। अब कल से यह कहना भूल जायँगे। (हँसता है) क्यों माँ!

पन्ना : ठीक है, लाल!

चन्दन : माँ! अच्छी तरह से क्यों नहीं बोलती? और तुम्हारी आँखें.....तुम्हारी आँखों में पानी कैसा? माँ.....तुम्हारी आँखों में .....

पन्ना : कहाँ चन्दन! पानी कहाँ? और तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धार बहे, मेरी आँखों से एक बूँद पानी भी न निकले?

चन्दन : ओह! माँ, तुम तो बातें करने में बड़ी अच्छी हो। जब मैं बड़ा होकर बहुत-सी जागीरें जीतूँगा, माँ! तो मैं तुम्हारे लिये एक मन्दिर बनवाऊँगा। देवी के स्थान पर तुमको बिठलाऊँगा और तुम्हारी पूजा करूँगा। तुम अपनी पूजा करने दोगी?

पन्ना : तुझसे मुझे ऐसी ही आशा है, चन्दन। अब बहुत बातें न करो, चन्दन? रात अधिक हो रही है, सो जाओ।

(कुछ आहट होती है)

चन्दन : माँ! माँ, देखो उस दरवाजे से कौन झाँक रहा है?

पन्ना : कीरत बारी होगा। तुम्हारा भोजन उठाने आया होगा। मैं देखती हूँ। (उठकर देखती है)

चन्दन : कोई और हो तो मैं अपनी तलवार लाऊँ!

पन्ना : (लौटती हुई) कोई नहीं है। महल में किसका डर है? लाल! तुम सो जाओ।

चन्दन : कहाँ सोऊँ! सज्जा तो अभी रसोईघर में ही होगी। मेरी शय्या ठीक न की होगी।

पन्ना : तो .....तो .....तुम कुँवर जी की शय्या पर सो जाओ। शय्या ठीक होने पर तुम्हें उस पर लिटा दूँगी।

चन्दन : तुम बहुत अच्छी हो, माँ! आज कुँवर जी की शय्या पर लेटकर देखूँ! अब तो मैं भी राजकुमार हो गया। (एकाएक स्मरण कर) पर मेरी माला! राजकुमार के गले में माला होती है न! तुमने मेरी टूटी माला गूँथ दी?

पन्ना : नहीं गूँथ पायी, लाल। सामली आ गयी थी।

चन्दन : कल गूँथ देना। भूलना नहीं माँ! (शय्या पर लेटता है) आहा माँ! कितनी नरम शय्या है। जी होता है, सदा इसी पर सोता रहूँ।

पन्ना : (चीखकर) चन्दन।

चन्दन : क्या हुआ माँ!

पन्ना : कुछ नहीं .....कुछ .....नहीं। आज मेरा जी कुछ अच्छा नहीं है। कभी-कभी कलेजे में शूल-सी उठती है। तुम सो जाओ तो मैं भी सो जाऊँगी।

चन्दन : मैं किसी वैद्य के यहाँ जाऊँ, माँ?

पन्ना : नहीं, वैद्य के पास इसकी दवा नहीं है। यह आप-से-आप उठती है और आप-से-आप शान्त हो जाती है। तुम सो जाओ.....मैं भी कुँवर को खिलाकर जल्दी सो जाऊँगी।

चन्दन : (चौंककर) माँ, एक काली छाया मेरे सिर के पास आयी, उसने मुझे मारने को तलवार उठायी? माँ वह काली छाया·····काली छाया·····

पन्ना : मैं तो तुम्हारे पास बैठी हूँ, लाल! यहाँ कौन-सी काली छाया आयेगी?

चन्दन : कोई छाया नहीं आयेगी माँ! पर न जाने क्यों नींद नहीं आ रही है। तुम मुझे कोई गीत सुना दो, सुनते-सुनते सो जाऊँ।

पन्ना : अच्छी बात है, मेरे लाल! मैं गीत ही गाऊँगी। अपने लाल को सुला दूँ।

(करुण स्वर से गीत गुनगुनाती है)

उड़ जा रे पंखेरूआ, साँझ पड़ी।
चार पहर बाटड़ली जोही मेड़याँ खड़ी ए खड़ी।
उड़ जा पंखेरूआ, साँझ पड़ी। डबडब भरिया नैन दिरिघड़ा
लग रई झड़ी ए झड़ी। उड़ जा रे पंखेरूआ, साझ पड़ी!!
तेरी फिकर हूँ भई दिवानी। मुसकल घड़ी ए घड़ी। उड़ जा पंखेरूआ·····!!

(धीरे-धीरे गाना समाप्त होता है)

पन्ना : (फिर पुकारती है) चन्दन!

(चन्दन के न बोलने पर पन्ना अलग हटकर जोर से सिसकी लेती है)

पन्ना : मेरा लाल सो गया। मैंने अपने लाल को ऐसी निद्रा में सुला दिया कि अब यह न उठेगा। (सिसकियाँ लेती है) ओह पन्ना! तूने अपने भोले बच्चे के साथ कपट किया है! तूने अंगारों की सेज पर अपने फूल-से लाल को सुला दिया है। तू सर्पिणी है। सर्पिणी जो अपने ही बच्चे को खा डालती है। जान-बूझकर अपने पुत्र की हत्या कराने जा रही है। हाय! अभागिन माँ! संसार में तेरा भी जन्म होने को था! (सिसकियाँ लेती है। फिर चन्दन को सम्बोधित करते हुए) लाल! तुम्हारी माला मैं नहीं गूँथ सकी। तुम्हारा जीवन अधूरा होने जा रहा है तो माला कैसे पूरी होती? (सिसकियाँ) आज तुम भूखे ही रह गये मेरे लाल! आज अन्तिम दिन मैं तुम्हें अपने हाथों से भोजन भी न करा सकी! तुम क्या जानो कि कल तुम और कुँवर साथ-साथ कैसे भोजन करोगे! कहते थे कल तुम परोसकर खिलाना। मैं अब किसे खिलाऊँगी, चन्दन! (सिसकियाँ) तुम्हारे अँगूठे से रक्त की धारा बही। अब हृदय से रक्त की धारा बहेगी तो मैं कैसे रोक सकूँगी! मेरे लाल! मेरे चन्दन! जाओ, यह रक्त-धारा अपनी मातृभूमि पर चढ़ा दो। आज मैंने भी दीपदान किया है। दीपदान! अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है। ऐसा दीपदान भी किसी ने किया है! एक बार तुम्हारा मुख देख लूँ। कैसा सुन्दर और भोला मुख है! (सिसकियाँ लेती है।)

(एकाएक भड़भड़ाहट की आवाज होती है। हाथ में तलवार लिये बनवीर आता है।)

बनवीर : (मद्य पीने से उसके शब्द लड़खड़ा रहे हैं।) पन्ना!

पन्ना : महाराज बनवीर!

बनवीर : सारे राजपूताने में एक ही धाय माँ है पन्ना! सबसे अच्छी! मैं ऐसी धाय माँ को प्रणाम करने आया हूँ। (रुककर) ऐं, धाय माँ की आँखों में आँसू!

पन्ना : नहीं·····आँसू नहीं हैं। आज मेरे कुँवर बिना भोजन किये ही सो गये।

बनवीर : आज के दिन भोजन नहीं किया? अरे, आज तो उत्सव का दिन है। आनन्द का दिन है। (अट्टहास करता है) मेरे महल में तीन सौ सामन्तों ने भोजन किया। आज कीरत की टोकरी देखतीं। भोजन उठाते-उठाते वह जिन्दगी भर के लिए थक गया होगा। (हँसता है) जिन्दगी भर के लिए! तो कहाँ है कुँवर उदयसिंह? मैं उन्हें अपने हाथ से भोजन करा दूँ।

पन्ना : कुँवर सो गये हैं। वे किसी के हाथ से भोजन नहीं करते, मैं ही उन्हें खिला दूँगी।

बनवीर : धाय माँ हो न! पन्ना! आज तुमने सोना का नाच नहीं देखा! ओह! कितना अच्छा नाचती है। मैंने उससे कह दिया था कि वह कुँवर उदयसिंह को और धाय माँ को अपना नाच दिखला दे।

पन्ना : वह आयी थी। शायद तुम्हीं ने उसे भेजा था, पर कुँवर जी का जी अच्छा नहीं था, इसलिए मैंने उन्हें नहीं भेजा!

बनवीर : जी अच्छा नहीं था, और आज का दीपदान भी तुमने नहीं देखा।

पन्ना : मेरे लिये देखने की बात नहीं है, करने की बात है।

बनवीर : ठीक है, धाय माँ तो मंगल-कामनाओं की देवी है। वे दीपदान करके चित्तौड़ का कल्याण करेंगी। मैं भी चित्तौड़ का कल्याण करूँगा। एक बात और कहूँ, पन्ना! मैं तुम्हें मारवाड़ में एक जागीर देना चाहता हूँ। वहाँ तुम्हारे लिये तुलजा भवानी का मन्दिर बनेगा। मन्दिर! सारे लोग तुम्हें इतनी श्रद्धा से देखेंगे कि तुलजा भवानी में और तुममें कोई अन्तर भी न होगा। तुम्हीं देवी के उस मन्दिर में रहोगी। लोग तुम्हारी पूजा करेंगे।

पन्ना : (चीखकर) बनवीर!

बनवीर : (अट्टहास कर) महाराज बनवीर नहीं कहा! मेरे कहने भर से तुम देवी हो गयी। महाराज बनवीर को बनवीर कहने लगी! (हँसता है) देवी को प्रणाम। देखो। अब तुम्हें मोह-ममता से दूर रहना होगा। तुम कुँवर उदयसिंह को मुझे दे दोगी और मैं उसे यह तलवार दूँगा।

(तलवार खींच लेता है)

पन्ना : ऐं, यह तलवार! इस पर रक्त क्यों लगा है?

बनवीर : रक्त तो तलवार की शोभा है, पन्ना! वह अनन्त सुहाग से भरी है। यह तो उसके सिन्दूर की रेखा है। बिना रक्त के तलवार भी कभी तलवार कहला सकती है?

पन्ना : यह तलवार म्यान में रख लो, महाराज!

बनवीर : क्या तुम्हें भय लगता है। चित्तौड़ में तलवार से किसी को भय नहीं लगता। धाय माँ होने पर तुममें इतनी ममता भर गयी कि तलवार नहीं देख सकती? पन्ना! तलवार आसानी से म्यान के भीतर नहीं जाती।

पन्ना : आधी रात हो चुकी है, महाराज बनवीर! विश्राम करो।

बनवीर : विश्राम मैं करूँ? बनवीर! जिसे राजलक्ष्मी को पाने के लिए दूर तक की यात्रा करनी है। मैं अपने साथ कुँवर उदयसिंह को भी ले जाना चाहता हूँ।

पन्ना : यह नहीं होगा·····यह नहीं होगा, महाराज बनवीर।

बनवीर : जागीर नहीं चाहतीं?

पन्ना : नहीं।

बनवीर : तो उदयसिंह के बदले जो माँगो दिया जायगा।

पन्ना : राजपूतानी व्यापार नहीं करती, महाराज! वह या तो रणभूमि पर चढ़ती है या चिता पर।

बनवीर : दो में से किसी पर भी तुम नहीं चढ़ सकोगी। तुम्हारा महल सैनिकों से घिरा है।

पन्ना : सैनिकों को किसने आज्ञा दी? महाराज विक्रमादित्य·····

बनवीर : (बीच में ही) वे अब इस संसार में नहीं हैं। पन्ना! उन्होंने रक्त की नदी पार कर ली है। उसी रक्त की लहर मेरी तलवार पर है।

पन्ना : ओह बनवीर! हत्यारा बनवीर!

बनवीर : महाराणा बनवीर को हत्यारा बनवीर नहीं कह सकती, हत्यारा बनवीर कहनेवाली जीभ काट ली जायगी।

पन्ना : तो लो मेरी जीभ काट लो। और यहाँ से चले आजो। महाराणा विक्रमादित्य·····।

बनवीर : बार-बार विक्रमादित्य का नाम क्यों लेती हो? प्रेतों और पिशाचों को वह नाम लेने दो। यदि मेरा नाम लेना है तो जय-जयकार के साथ नाम लो।

पन्ना : धिक्कार है बनवीर! तुम्हारी माँ ने तुम्हें जन्म देते ही क्यों न मार डाला।

बनवीर : चुप रह धाय! कहाँ है उदयसिंह?

पन्ना : तू उदयसिंह को छू भी नहीं सकता। नीच! नारकी! महाराणा विक्रमादित्य की हत्या के बाद तू उदयसिंह को देख भी नहीं सकता।

बनवीर : मैं नहीं देखूँगा, मेरी तलवार देखेगी। विक्रम के रक्त से सनी हुई तलवार अब उदयसिंह के रक्त से धोयी जायगी।

पन्ना : ओह क्रूर बनवीर! तुम तो उदयसिंह के संरक्षक थे। रक्षा के बदले क्या तुम उसकी हत्या करोगे? नहीं·····नहीं, यह नहीं हो सकता, यह नहीं हो सकता है। महाराज बनवीर! तुम राज्य करो चित्तौड़ पर, मेवाड़ पर, सारे राजपूताने पर राज्य करो, पर कुँवर उदयसिंह को छोड़ दो। मैं उसे लेकर संन्यासिनी हो जाऊँगी। तीर्थ में वास करूँगी। तुम्हारा मुकुट तुम्हारे माथे पर रहे, पर मेरा कुँवर भी मेरी गोद में रहे। बनवीर! महाराज बनवीर मुझे यह भिक्षा दे दो।

बनवीर : दूर हट दासी! यह नाटक बहुत देख चुका हूँ। उदयसिंह की हत्या ही तो मेरे राजसिंहासन की सीढ़ी होगी। जब तक वह जीवित है तब तक सिंहासन मेरा नहीं होगा। तू मेरे सामने से दूर हट जा।

पन्ना : मैं नहीं हटूँगी! अपने कुँवर की शय्या से दूर नहीं हटूँगी।

बनवीर : उदयसिंह को सुला दिया है जिससे उसे मरने का कष्ट न हो। उसका मुख ढक दिया है। वाह री धाय माँ! बालक के मरने में भी ममता का ध्यान रखती है। (तीव्रता से) शय्या से दूर हट, पन्ना। मैं उसे चिर निद्रा में सुला दूँ।

पन्ना : (साहस से) नहीं, ऐसा नहीं होगा, क्रूर, नराधम, नारकी! ले, मेरी कटार का प्रसाद ले। (आक्रमण करती है, उसकी चोट बनवीर की ढाल पर सुन पड़ती है।)

बनवीर : (क्रूर अट्टहास करता है) ह ह ह ह! दासी क्षत्राणी! कर लिया कटार का वार? यह कटार मेरे हाथ में है। अब किससे वार करेगी। अब तुझे भी समाप्त कर दूँ? लेकिन स्त्री पर हाथ नहीं उठाऊँगा।

पन्ना : अबोध सोते हुए बालक पर हाथ उठाते हुए तेरा हृदय तुझे नहीं धिक्कारता? पापी।

बनवीर : (शय्या के समीप जाकर) यही है, यही है मेरे मार्ग का कण्टक। आज मेरे नगर में स्त्रियों ने दीपदान किया है। मैं भी यमराज को इस दीपक का दान करूँगा। यमराज! लो इस दीपक को। यह मेरा दीपदान है।

(तलवार से उदय के धोखे में चन्दन पर जोर से तलवार का प्रहार करता है। पन्ना जोर से चीखकर मूर्च्छित हो जाती है। कमरे में मन्द लौ से दीपक जलता रहता है।)

अभ्यास प्रश्न

● समीक्षात्मक प्रश्न

1. 'दीपदान' एकांकी की कथावस्तु या कथानक संक्षेप में लिखिए।

अथवा

पाठ्य-पुस्तक में संकलित डॉ० रामकुमार वर्मा द्वारा लिखित एकांकी का सारांश (कथा-सार) अपने शब्दों में लिखिए।

2. 'दीपदान' एकांकी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

सिद्ध कीजिए कि 'पन्ना धाय के चरित्र में माँ की ममता, राजपूतानी का रक्त, राजभक्ति और आत्म-त्याग की भावना है।'

अथवा

'अपने जीवन का दीप मैंने रक्त की धारा पर तैरा दिया है'—इस कथन के आधार पर पन्ना धाय के चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

3. 'दीपदान' एकांकी के कथा-संगठन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
4. 'बनवीर की महत्त्वाकांक्षा ने उसे हत्यारा बना दिया है'—इस कथन के आधार पर बनवीर का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

'दीपदान' एकांकी के आधार पर बनवीर का चरित्र-चित्रण कीजिए।

5. 'दीपदान' एकांकी के आधार पर सोना का चरित्र-चित्रण कीजिए।
6. सामली तथा कीरत बारी के विषय में एक-एक अनुच्छेद लिखिए।
7. डॉ० रामकुमार वर्मा के जीवन एवं प्रमुख कृतियों का परिचय दीजिए।
8. एकांकी के तत्त्वों के आधार पर 'दीपदान' एकांकी की समीक्षा कीजिए।

● लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'दीपदान' एकांकी का उद्देश्य स्पष्ट कीजिए।
2. 'दीपदान' एकांकी के कौन-कौन स्थल आपको प्रिय लगते हैं और क्यों?
3. पन्ना उदयसिंह की शय्या पर चन्दन को क्यों सुला देती है?
4. दीपदान उत्सव का आयोजन क्यों और किसने कराया था?
5. बनवीर द्वारा उदयसिंह के विरुद्ध रचे जानेवाले षड्यन्त्र का आभास पन्ना को कैसे हुआ?
6. 'दीपदान' एकांकी के शीर्षक की सार्थकता पर अपना तर्क दीजिए।
7. चन्दन की हत्या कराने के अतिरिक्त और क्या-क्या उपाय उदयसिंह को बचाने के लिए किये जा सकते थे?
8. उदयसिंह और सोना के बार-बार आग्रह करने पर भी पन्ना दीपदान उत्सव देखने क्यों नहीं गयी?
9. क्या यह बात आपको ठीक लगती है कि 'चन्दन की हत्या' कराकर पन्ना ने सर्पिणी का आचरण किया है, वह कलंकिनी है?
10. पन्ना बनवीर पर कब और किससे आक्रमण करती है?

● वस्तुनिष्ठ प्रश्न

सही उत्तर के सम्मुख सही (✓) का चिह्न लगाइये–

1. **इस एकांकी के दीपदान शीर्षक का सबसे उपयुक्त कारण है–**
   (अ) दीपदान का महोत्सव ही इसका प्रधान कार्य है। ( )
   (ब) पन्ना अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा के लिए अपने कुल के दीपक चन्दन का दान करती है। ( )
   (स) चित्तौड़ की स्त्रियाँ नृत्य और गान के साथ दीपदान करती हैं। ( )
2. **दीपदान महोत्सव का आयोजन इसलिए किया गया था, क्योंकि–**
   (अ) बनवीर विलासी और नृत्य-गान का प्रेमी था। ( )
   (ब) बनवीर उदयसिंह की हत्या करना चाहता था। ( )
   (स) बनवीर तुलजा भवानी को प्रसन्न करना चाहता था। ( )
3. **उदयसिंह की शय्या पर चन्दन को पन्ना सुला देती है, क्योंकि–**
   (अ) उदयसिंह की रक्षा करना चाहती थी। ( )
   (ब) चन्दन से उसे प्रेम नहीं था। ( )
   (स) उसे विश्वास नहीं था कि बनवीर ऐसा करेगा। ( )
4. **चन्दन से पहले बनवीर ने किसकी हत्या की थी–**
   (अ) कीरत बारी ( )
   (ब) विक्रमादित्य ( )
   (स) सामली ( )

● आन्तरिक मूल्यांकन

1. अपने सहपाठियों के साथ मिलकर 'दीपदान' एकांकी का मंचन कीजिए।
2. डॉ० रामकुमार वर्मा की रचनाओं की एक सूची बनाइए।

❖

2 उदयशंकर भट्ट

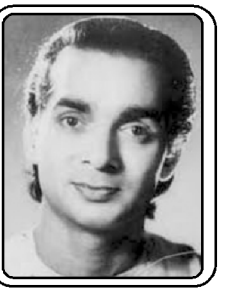

लेखक-एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**—3 अगस्त, 1898 ई०।
- **जन्म-स्थान**—इटावा (उ० प्र०)।
- स्वाधीनता-आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण भूमिका।
- आकाशवाणी में परामर्शदाता, निदेशक, प्रोड्यूसर रहे।
- **मृत्यु**—22 फरवरी, 1966 ई०।

जीवन-परिचय—सुविख्यात साहित्यकार उदयशंकर भट्ट का जन्म 3 अगस्त, सन् 1898 ई० को उत्तर प्रदेश के इटावा नगर स्थित उनके ननिहाल में हुआ था। आपके पूर्वज गुजरात से आकर उत्तर प्रदेश में बस गये थे। आपके नाना का परिवार शिक्षा, भाषा एवं साहित्य के क्षेत्र में अपनी विशेष रुचि प्रदर्शित करता था। नाना के यहाँ बचपन में ही भट्ट जी को संस्कृत भाषा का ज्ञान करा दिया गया था तथा बाद में संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी की शिक्षा आपने अर्जित की। चौदह वर्ष की अवस्था में ही माता-पिता का साया भट्ट जी के सिर से उठ गया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के उपरान्त आपने पंजाब से 'शास्त्री' और कलकत्ता (कोलकाता) से 'काव्यतीर्थ' की उपाधि भी प्राप्त की। सन् 1923 ई० में जीविका की खोज में आप लाहौर चले गये और वहाँ एक विद्यालय में हिन्दी और संस्कृत का अध्यापन-कार्य करते रहे।

आपने भारतीय स्वाधीनता-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया और सन् 1947 ई० में देश-विभाजन के उपरान्त लाहौर छोड़कर दिल्ली चले आये। यहाँ आप आकाशवाणी में परामर्शदाता एवं निदेशक के रूप में दीर्घकाल तक सेवाएँ अर्पित कीं। नागपुर और जयपुर आकाशवाणी में प्रोड्यूसर के पद पर भी कार्य किया। सेवा-निवृत्त होने के बाद आप स्वतन्त्र रूप से कहानी, उपन्यास, आलोचना और नाटक आदि विधाओं पर लेखनी चलाते रहे। 22 फरवरी, सन् 1966 ई० को यह महान् साहित्यकार गोलोकवासी हो गया।

कृतियाँ—भट्ट जी के प्रमुख एकांकी हैं—समस्या का अन्त, धूमशिखा, वापसी, परदे के पीछे, अभिनव एकांकी, आज का आदमी, आदिम युग, स्त्री का हृदय, अन्त्योदय तथा चार एकांकी। भट्ट जी के प्रथम ऐतिहासिक नाटक 'विक्रमादित्य' में पश्चिमी शैली तथा दूसरी रचना 'दाहर' अथवा 'सिंह पल' में दुःखान्त पद्धति है। 'मुक्तिबोध' और 'शंका विजय' ऐतिहासिक नाटक, 'अम्बा' और 'सागर विजय' पौराणिक नाटक, 'कमला' और 'अन्तहीन अन्त' सामाजिक नाटक हैं तथा 'नया समाज' आधुनिक वर्ग का चित्र प्रस्तुत करनेवाला नाटक है। इसके अतिरिक्त भट्ट जी ने कविता, उपन्यास आदि विधाओं पर भी लिखा है।

साहित्यिक अवदान—बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न भट्ट जी का साहित्यिक जीवन काव्य-रचना से आरम्भ हुआ। सन् 1922 ई० से आपने नाटकों की रचना प्रारम्भ की और आजीवन नाट्य-सृजन में लगे रहे। आपने एकांकी विधा को नयी दिशा प्रदान की। रंगमंच एवं रेडियो-प्रसारण दोनों ही क्षेत्रों में आपके एकांकी सफल सिद्ध हुए हैं। किसी भी समस्या को जीवन्त रूप में प्रस्तुत कर देना भट्ट जी के एकांकियों की सर्वप्रमुख विशेषता है। आपकी नाट्य-कला देश की साहित्यिक प्रगति के साथ-साथ नया मोड़ लेती रही। भट्ट जी के एकांकी पौराणिक, हास्यप्रधान, समस्याप्रधान और सामाजिक विषयों पर आधारित हैं। ♦

नये मेहमान

पात्र-परिचय

विश्वनाथ	:	गृहपति
नन्हेंमल, बाबूलाल	:	अतिथि
प्रमोद, किरण	:	विश्वनाथ के बच्चे
आगन्तुक	:	रेवती का भाई
रेवती	:	विश्वनाथ की पत्नी

स्थान
भारत का कोई बड़ा नगर
समय
गर्मी की रात के आठ बजे

(गर्मी की ऋतु, रात के आठ बजे का समय। कमरे के पूर्व की ओर दो दरवाजे। दक्षिण का द्वार बाहर आने-जाने के लिए। पश्चिम का द्वार भीतर खुलता है। उत्तर की ओर एक मेज है जिस पर कुछ किताबें और अखबार रखे हैं। पास में ही दो कुर्सियाँ रखी हैं। पश्चिम द्वार के पास एक पलँग बिछा है। मेज पर रखा हुआ पुराना पंखा चल रहा है, जिससे बहुत कम हवा आ रही है। कमरा बेहद गरम है। मकान एक साधारण गृहस्थ का है। पलँग के पास चार-पाँच साल का एक बच्चा सो रहा है। पंखे की हवा केवल उस बच्चे को लग रही है। फिर भी वह पसीने से तर है। इसलिए वह कभी-कभी बेचैन हो उठता है, फिर सो जाता है।

कुरता-धोती पहने एक व्यक्ति प्रवेश करता है। पसीने से उसके कपड़े तर हैं। कुरता उतारकर वह खूँटी पर टाँग देता है और हाथ के पंखे से बच्चे को हवा करता है। उसका नाम विश्वनाथ है। उम्र 45 वर्ष, गठा हुआ शरीर, गेहुँआ रंग, मुख पर गम्भीरता तथा सुसंस्कृति के चिह्न।)

विश्वनाथ : ओफ, बड़ी गरमी है। (पंखा जोर-जोर से करने लगता है) इन बन्द मकानों में रहना कितना भयंकर है! मकान है कि भट्ठी!

(पश्चिम की ओर से एक स्त्री प्रवेश करती है)

रेवती : (आँचल से मुँह का पसीना पोंछती हुई) पत्ता तक नहीं हिल रहा है। जैसे साँस बन्द हो जायगी। सिर फटा जा रहा है।

(सिर दबाती है)

विश्वनाथ : पानी पीते-पीते पेट फूला जा रहा है, और प्यास है कि बुझने का नाम नहीं लेती। अभी चार गिलास पानी पीकर आया हूँ, फिर भी होंठ सूख रहे हैं। एक गिलास पानी और पिला दो। ठण्डा तो क्या होगा।

रेवती : गरम है। आँगन में घड़े में भी तो पानी ठण्डा नहीं होता, हवा लगे, तब तो ठण्डा हो। जाने कब तक इस जेलखाने में सड़ना होगा।

विश्वनाथ : मकान मिलता ही नहीं। आज दो साल से दिन-रात एक करके ढूँढ़ रहा हूँ। हाँ, पानी तो ले आओ, जरा गला ही तर कर लूँ।

रेवती : बरफ ले आते। पर मरी बरफ भी कोई कहाँ तक पिये।

विश्वनाथ : बरफ! बरफ का पानी पीने से क्या फायदा। प्यास जैसी-की-तैसी, बल्कि दुगुनी लगती है। ओफ! पंखा ले लो। बच्चे क्या ऊपर हैं?

रेवती : रहने दो, तुम्हीं करो। छत इतनी छोटी है कि पूरी खाट भी तो नहीं आती। एक खाट पर दो-दो, तीन-तीन बच्चे सोते हैं, तब भी पूरा नहीं पड़ता।

विश्वनाथ : एक ये पड़ोसी हैं, निर्दयी, जो खाली छत पड़ी रहने पर भी, बच्चों के लिए एक खाट नहीं बिछाने देते।

रेवती : वे तो हमको मुसीबत में देखकर प्रसन्न होते हैं। उस दिन मैंने कहा तो लाला की औरत बोली क्या छत तुम्हारे लिये है? नकद पचास देते हैं, तब चार खाटों की जगह मिली है। न बाबा, यह नहीं हो सकेगा। मैं खाट नहीं बिछाने दूँगी। सब हवा रुक जायगी। और किसी को सोता देखकर नींद नहीं आती।

विश्वनाथ : पर बच्चों के सोने में क्या हर्ज है? जरा आराम से सो सकेंगे। कहो तो मैं कहूँ?

रेवती : क्या फायदा? अगर लाला मान भी ले तो वह दुष्टा नहीं मानेगी। वैसे भी मैं उसकी छत पर बच्चों को अकेला सोना पसन्द नहीं करूँगी। बड़ी डायन औरत है। उसके तो बाल-बच्चे हैं नहीं, कुछ कर दे तब?

विश्वनाथ : फिर जाने दो। मैं नीचे आँगन में सो जाया करूँगा। कमरे में भला क्या सोया जायगा? मैं कभी-कभी सोचता हूँ यदि कोई अतिथि आ जाय तो क्या होगा?

रेवती : ईश्वर करे इन दिनों कोई मेहमान न आये। मैं तो वैसे ही गर्मी के मारे मर रही हूँ, पिछले पन्द्रह दिन से दर्द के मारे सिर फट रहा है। मैं ही जानती हूँ कैसे रोटी बनाती हूँ।

विश्वनाथ : सारे शहर में जैसे आग बरस रही हो। यहाँ की गरमी से ईश्वर बचाये। इसीलिए यहाँ गर्मियों में सभी सम्पन्न लोग पहाड़ों पर चले जाते हैं।

रेवती : चले जाते होंगे। गरीबों की तो मौत है।

(रेवती जाती है। बच्चा गर्मी से घबरा उठता है। विश्वनाथ जोर-जोर से पंखा करता है।)

विश्वनाथ : इन सुकुमार बालकों का क्या अपराध है? इन्होंने क्या बिगाड़ा है? तमाम शरीर मारे गर्मी के उबल रहा है।

(रेवती पानी का गिलास लेकर आती है।)

रेवती : बड़े का तो अभी बुरा हाल है। अब भी कभी-कभी देह गर्म हो जाती है।

विश्वनाथ : (पानी पीकर) उसने क्या कम बीमारी भोगी है—पूरे तीन महीने तो पड़ा रहा है। वह तो कहो मैंने उसे शिमला भेज दिया, नहीं तो न जाने·····

रेवती : भगवान् ने रक्षा की। देखा नहीं, सामनेवालों की लड़की को फिर से टाइफाइड हो गया और वह चल बसी। तुम कुछ दिनों की छुट्टी क्यों नहीं ले लेते। मुझे डर है, कहीं कोई बीमार न पड़ जाय।

विश्वनाथ : छुट्टी कोई दे तब न! छुट्टी ले भी लूँ तो खर्च चाहिए। खैर, तुम आज जाकर ऊपर सो जाओ। मैं आँगन में खाट डालकर पड़ा रहूँगा। बच्चे को ले जाओ, वह गर्मी में भुन रहा है।

रेवती : यह नहीं हो सकता। मैं नीचे सो जाऊँगी। तुम ऊपर छत पर जाकर सो जाओ और ऊपर भी क्या हवा है। चारों तरफ दीवारें तप रही हैं। तुम्हीं जाओ ऊपर।

विश्वनाथ : यही तो तुम्हारी बुरी आदत है। किसी का कहना न मानोगी, बस अपनी ही हाँके जाओगी। पन्द्रह दिन से सिर में दर्द हो रहा है। मैं कहता हूँ खुली हवा में सो जाओगी तो तबीयत ठीक हो जायगी।

रेवती : तुम तो व्यर्थ की जिद करते हो। भला यहाँ आँगन में तुम्हें नींद आयेगी? बन्द मकान, हवा का नाम नहीं। रात भर नींद न आयेगी। सवेरे काम पर जाना है। जाओ, मेरा क्या है, पड़ी रहूँगी।

विश्वनाथ : नहीं, यह नहीं हो सकता। आज तो तुम्हें ऊपर सोना पड़ेगा। वैसे भी मुझे कुछ काम करना है।

रेवती : ऐसी गर्मी में क्या काम करोगे? तुम्हें भी न जाने क्या धुन सवार हो जाती है। जाओ सो जाओ। मैं आँगन में खाट पर इसे लेकर जैसे-तैसे रात काट लूँगी, जाओ।

विश्वनाथ : अच्छा तुम जानो। मैं तो तुम्हारी भलाई के लिए कह रहा था। मैं ही ऊपर जाता हूँ।

(बाहर से कोई दरवाजा खटखटाता है।)

रेवती : कौन होगा?

विश्वनाथ : न जाने! देखता हूँ।

रेवती : हे भगवान्! कोई मुसीबत न आये।

(बच्चे को पंखा करती है। बच्चा गर्मी से उठ बैठता है और पानी माँगता है। वह बच्चे को पानी पिलाती है, पंखा करती है। इसी समय दो व्यक्तियों के साथ विश्वनाथ प्रवेश करता है। रेवती बच्चे को लेकर आँगन में चली जाती है। आगन्तुक एक साधारण बिस्तर तथा एक सन्दूक लेकर कमरे में प्रवेश करते हैं। विश्वनाथ भी पीछे-पीछे आता है। कमीजों के ऊपर काली बण्डी, सिर पर सफेद पगड़ियाँ। बड़े की अवस्था पैंतीस और छोटे की चौबीस है। रंग साँवला, बड़े की मूँछें मुँह को घेरे हुए। माथे पर सलवट। छोटे की अधकटी मूँछें, लम्बा मुख और बड़े-बड़े दाँत। दोनों मैली धोतियाँ पहने हैं। बड़े का नाम नन्हेंमल और छोटे का बाबूलाल है। इस हबड़-धबड़ में दोनों बच्चे ऊपर से उतरकर आते हैं और दरवाजे के पास खड़े होकर आगन्तुकों को देखते हैं।)

विश्वनाथ : (बड़े लड़के से) प्रमोद, जरा कुर्सी इधर खिसका दो। (दूसरे अतिथि से) आप इधर खाट पर आ जाइये। जरा पंखा तेज कर देना, किरण। (किरण पंखा तेज करती है, किन्तु पंखा वैसे ही चलता है।)

नन्हेंमल : (पगड़ी के पल्ले से मुँह का पसीना पोंछकर उसी से हवा करता हुआ।) बड़ी गर्मी है। क्या कहें पण्डित जी, पैदल चले आ रहे हैं, कपड़े तो ऐसे हो गये कि निचोड़ लो।

विश्वनाथ : जी, आप लोग……

बाबूलाल : चाचा, मेरे कपड़े निचोड़कर देख लो। एक लोटे से कम पसीना नहीं निकलेगा। धोती ऐसी चर्रा रही है, जैसे पुरानी हो। पिछले दिनों नकद नौ रुपये खर्च करके खरीदी थी।

नन्हेंमल : मोतीराम की दुकान से ली होगी। बड़ा मक्कार है। मैंने भी कुरतों के लिए छह गज मलमल मोल ली थी, सवा रुपया गज दी, जबकि नत्थामल के यहाँ साढ़े नौ आने गज बिक रही थी। पण्डित जी, गला सूखा जा रहा है। स्टेशन पर पानी भी नहीं मिला, मन करता है लेमन की पाँच-छह बोतलें पी जाऊँ।

बाबूलाल : मुझे कोई पिलाकर देखे, दस से कम नहीं पीऊँगा। (बच्चों की ओर देखकर क्या नाम है तुम्हारा भाई?

प्रमोद : प्रमोद।

किरण : किरण।

बाबूलाल : ठण्डा-ठण्डा पानी पिलाओ दोस्त, प्राण सूखे जा रहे हैं।

विश्वनाथ : देखो प्रमोद, कहीं से बर्फ मिले तो ले आओ, आप लोग……

नन्हेंमल : अपना लोटा कहाँ रखा है? थैले में ही है न?

बाबूलाल : बिस्तर में होगा चाचा, निकालूँ क्या? और तो और, बिस्तर भी पसीने से भीग गया, चाचा मैं तो पहले नहाऊँगा, फिर जो होगा देखा जायगा, हाँ नहीं तो। मुझे नहीं मालूम था यहाँ इतनी गर्मी है।

नन्हेंमल : देखते जाओ। हाँ, साहब!

विश्वनाथ : क्षमा कीजिएगा आप कहाँ से पधारे हैं?

नन्हेंमल : अरे, आप नहीं जानते। वह लाल सम्पतराम हैं न गोटेवाले, वह मेरे चचेरे भाई हैं। क्या बतायें साहब, उन बेचारों का कारोबार सब चौपट हो गया, हम लोगों के देखते-देखते वह लाखों के आदमी खाक में मिल गये। बाबू, यह लो मेरी बण्डी सन्दूक में रख दो।

विश्वनाथ : कौन सम्पतराम?

बाबूलाल : अरे वही गोटेवाले। लाओ न, चाचा, (सन्दूक खोलकर बण्डी रखते हुए) माल-मसाला तो अण्टी में है न?

नन्हेंमल : नहीं! जेब में है। बण्डी की जेब में है। अब डर की क्या बात है! घर ही तो है। जरा बीड़ी का बण्डल तो मेरी जेब से निकाल।

बाबूलाल : बीड़ी तो मेरे पास भी है, लो जरा भाई, दियासलाई ले आना।

किरण : अभी लाया।

(जाता है और लौटकर दियासलाई देता है। दोनों बीड़ी पीते हैं।)

विश्वनाथ : मैं सम्पतराम को नहीं जानता।

नन्हेंमल : मैं सम्पतराम को जानने की·····क्यों, वह तो आपसे मिले हैं। आपको तो वह·····

बाबूलाल : हाँ, उन्होंने कई बार मुझसे कहा है। आपकी तो वह बहुत तारीफ करते हैं। पण्डित जी, क्या मकान इतना ही बड़ा है?

नन्हेंमल : देख नहीं रहे, इसके पीछे एक कमरा दिखायी देता है। पण्डित जी, इसके पीछे आँगन होगा और ऊपर छत होगी? शहर में तो ऐसे ही मकान होते हैं।

किरण : (विश्वनाथ से) माँ पूछती है खाना·····

नन्हेंमल : क्यों बाबूलाल? पण्डित जी, कष्ट तो होगा, पर तुम जानो, खाना तो·····

बाबूलाल : बस एक साग और पूरी।

नन्हेंमल : वैसे तो मैं पराँठे भी खा लेता हूँ।

बाबूलाल : अरे खाने की भली चलायी, पेट ही भरना है। शहर में आये हैं, तो किसी को तकलीफ थोड़े ही देंगे। देखिये पण्डित जी, जिसमें आपको आराम हो, हम तो रोटी भी खा लेंगे। कल फिर देखी जायगी।

नन्हेंमल : भूख कब तक नहीं लगेगी·····सारा दिन तो गया।

बाबूलाल : नहाने का प्रबन्ध तो होगा, पण्डित जी?

(प्रमोद बर्फ का पानी लाता है)

नन्हेंमल : हाँ भैया, ला तो जरा, डेढ़ लोटा पानी पीऊँगा।

बाबूलाल : उतनी ही मैं भी।

(दोनों गट-गट पानी पीते हैं।)

किरण : (विश्वनाथ से धीरे से) फिर खाना·····

विश्वनाथ : (इशारे से) ठहर जा जरा।

नन्हेंमल : (पानी पीकर) आह, अब जान में जान आयी। सचमुच गर्मी में पानी ही तो जान है।

बाबूलाल : पानी भी खूब ठण्डा है। वाह भैया, खुश रहो।

नन्हेंमल : कितने सीधे लड़के हैं।

बाबूलाल : शहर के हैं न।

विश्वनाथ : क्षमा कीजिए, मैंने आपकी·····

दोनों : अरे पण्डित जी, आप कैसी बातें करते हैं? हम तो आपके पास के हैं।

विश्वनाथ : आप कहाँ से आये हैं?

नन्हेंमल : बिजनौर से।

विश्वनाथ : (आश्चर्य से) बिजनौर से। बिजनौर मैं तो……मैं गया हूँ, किन्तु……

नन्हेंमल : मैं जरा नहाना चाहता हूँ।

बाबूलाल : मैं भी स्नान करूँगा।

विश्वनाथ : पानी तो नल में शायद ही हो, फिर भी देख लो। प्रमोद, इन्हें नीचे नल पर ले जाओ।

बाबूलाल : तब तक खाना भी तैयार हो जायगा।

(दोनों बाहर निकल आते हैं। रेवती का प्रवेश)

रेवती : ये लोग कौन हैं? जान-पहचान के तो मालूम नहीं पड़ते।

विश्वनाथ : क्या पूछूँ? दो-तीन बार पूछा, ठीक-ठीक उत्तर ही नहीं देते।

रेवती : मेरा तो दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है। इधर पिछली शिकायत फिर से बढ़ती जा रही है। पहले सोते-सोते हाथ-पैर सुन्न हो जाते थे, अब बैठे-बैठे हो जाते हैं।

विश्वनाथ : क्या बताऊँ, जीवन में तुम्हें कोई सुख न दे सका। नौकर भी नहीं टिकता है।

रेवती : पानी जो तीन मंजिल पर चढ़ाना पड़ता है, इसलिए भाग जाता है। गर्मी क्या कम है। किसी को क्या जरूरत पड़ी है जो गर्मी में भुने। यह तो हमारा ही भाग्य है कि चने की तरह भाड़ में भुनते हैं।

विश्वनाथ : क्या किया जाय?

रेवती : फिर क्या खाना बनाना होगा? पर ये हैं कौन?

विश्वनाथ : खाना तो बनाना ही पड़ेगा। कोई भी हों जब आये हैं तो जरूर खाना खायेंगे। थोड़ा-सा बना लो।

रेवती : (तुनककर) खाना तो खिलाना ही होगा–तुम भी खूब हो। भला, इस तरह कैसे काम चलेगा? दर्द के मारे सिर फटा जा रहा है, फिर खाना बनाना इनके लिए इस समय? आखिर ये आये कहाँ से हैं?

विश्वनाथ : कहते हैं बिजनौर से आये हैं।

रेवती : (आश्चर्य से) बिजनौर! क्या बिजनौर में तुम्हारी जान-पहचान है? अपनी बिरादरी का तो कोई आदमी वहाँ रहता नहीं है।

विश्वनाथ : बहुत दिन हुए एक बार काम से बिजनौर गया था, पर तब से अब तो बीस साल हो गये हैं।

रेवती : सोच लो, शायद वहाँ कोई साहित्यिक मित्र हो, उसी ने इन्हें भेजा हो।

विश्वनाथ : ध्यान तो नहीं आता, फिर भी कदाचित् कोई मुझे जानता हो और उसी ने भेजा हो। किसी सम्पतराम का नाम बता रहे थे, मैं जानता भी नहीं।

रेवती : बड़ी मुश्किल है। मैं खाना नहीं बनाऊँगी। पहले आत्मा फिर परमात्मा, जब शरीर ही ठीक नहीं रहता तो फिर और क्या करूँ?

विश्वनाथ : क्या कहेंगे कि रातभर भूखा मारा, बाजार से कुछ मँगा दो न!

रेवती : बाजार से क्या मुफ्त में आ जायगा! तीन-चार रुपये से कम में क्या उनका पेट भरेगा। पहले, तुम पूछ लो, मैं बाद में खाना बनाऊँगी।

(बाबूलाल का प्रवेश। रेवती का दूसरी ओर से जाना)

बाबूलाल : तबीयत अब शान्त हुई, फिर भी पसीने से नहा गया हूँ, न जाने पण्डित जी आप कैसे रहते हैं। (पंखा करता है)

विश्वनाथ : आठ-नौ लाख आदमी इस शहर में रहते हैं और उनमें से छह-सात लाख आदमी इसी तरह के मकानों में रहते हैं।

(ऊपर छत पर शोर मचता है)

प्रमोद : (आकर) उन्होंने दूसरी छत पर हाथ धो लिये, पानी फैल गया, इसीलिए वह पड़ोस की स्त्री चिल्ला रही है, मैंने कहा, सवेरे साफ कर देंगे, इन्हें मालूम नहीं था।

विश्वनाथ : तुमने क्यों नहीं बताया कि हाथ दूसरी जगह धोओ।

प्रमोद : मैं पानी पीने चला गया था। वहाँ उषा रोने लगी। उसे चुप कराया, पानी पिलाया और पंखा करता रहा।

विश्वनाथ : चलो कोई बात नहीं, उनसे कह दो कि सवेरे साफ करा देंगे।

(नेपथ्य में—"अरे बाबू, मेरी धोती दे देना। मैं भी नहा लूँ।")

बाबूलाल : लाया चाचा। (जाता है)

(पड़ोसी का तेजी से प्रवेश)

पड़ोसी : देखिए साहब मेहमान आपके होंगे मेरे नहीं। मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता कि मेरी छत पर इस तरह गन्दा पानी फैलाया जाय।

विश्वनाथ : वाकई गलती हो गयी, कल सवेरे साफ कर दूँगा।

पड़ोसी : आपसे रोज ही गलती हो जाती है।

विश्वनाथ : अनजान आदमी से गलती हो ही जाती है। उसे क्षमा कर देना चाहिए। कल से ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : होगा क्यों नहीं, रोज होगा। रोज होता है। अभी उसी दिन आपके एक और मेहमान ने पानी फैला दिया था। फिर वह खाट बिछाकर लेट गया था।

विश्वनाथ : मैंने समझा तो दिया था। फिर तो वह आदमी खाट पर नहीं लेटा था।

पड़ोसी : तो आपके यहाँ इतने मेहमान आते ही क्यों हैं? यदि मेहमान बुलाने हों, तो बड़ा-सा मकान लो।

विश्वनाथ : यह भी आपने खूब कहा कि इतने मेहमान क्यों आते हैं। अरे भाई, मेहमानों को क्या मैं बुलाता हूँ? खैर, आज क्षमा करें, अब आगे ऐसा नहीं होगा।

पड़ोसी : कहाँ तक कोई क्षमा करे। क्षमा, क्षमा! बस एक ही बात याद कर ली—क्षमा!

(चला जाता है। दोनों अतिथि आते हैं।)

दोनों : क्या बात है?

विश्वनाथ : कुछ नहीं, आप धोतियाँ छज्जे पर सुखा दें।

नन्हेंमल : ले बाबू, डाल तो दे, और ला, बीड़ी निकाल।

बाबूलाल : मेरी जेब से ले लो। (धोतियाँ लेकर चला जाता है)

नन्हेंमल : सचमुच हमारी वजह से आपको बड़ा कष्ट हुआ। (बैठकर बीड़ी सुलगाता है) भैया, जरा-सा पानी और पिला। उफ्फ, बड़ी गर्मी है। हाँ साहब, खाने में क्या देर-दार है? बात यह है कि नींद बड़े जोर से आ रही है।

विश्वनाथ : देखिए! मैं आपसे एक-दो बात पूछना चाहता हूँ।

नन्हेंमल : हाँ, हाँ पूछिए, मालूम होता है आपने हमें पहचाना नहीं।

(बाबूलाल आता है)

विश्वनाथ : जी हाँ, बात यह है कि मैं बिजनौर गया तो अवश्य हूँ, पर बहुत दिन हो गये।

नन्हेंमल : तो क्या हर्ज है कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है। हम तो आपको जानते हैं। कई बार आपको देखा भी है।

बाबूलाल : लाल भानामल की लड़की की शादी में आप नजीबाबाद गये थे।

नन्हेंमल : अरे दूर क्यों जाते हो। अभी पिछले साल आप नजीबाबाद गये थे।

विश्वनाथ : हाँ, पिछले साल मैं लखनऊ जाते हुए दो दिन के लिए जगदीशप्रसाद के पास मुरादाबाद ठहरा था।

नन्हेंमल : हाँ, सेठ जगदीशप्रसाद के यहाँ हमने आपको देखा था।

बाबूलाल : उनकी आटे की मिल है, क्या कहने हैं उनके—बड़े आदमी हैं। हम उन्हीं के रिश्तेदार हैं।

विश्वनाथ : पर उनका तो प्रेस है।

नन्हेंमल : प्रेस भी होगा। उनकी एक बड़ी मिल भी है। अब एक और गन्ने की मिल बिजनौर में खुल रही है।

बाबूलाल : अगले महीने खुल जायगी। हाँ भैया, पानी ले आये, लो चाचा, पहले तुम पी लो।

विश्वनाथ : तो आप कोई चिट्ठी-विट्ठी तो नहीं लाये हैं।

दोनों : (सकपकाकर) चिट्ठी-विट्ठी तो नहीं लाये हैं।

नन्हेंमल : सम्पतराम ने कहा था कि स्टेशन से उतरकर सीधे रेलवे रोड चले जाना। वहाँ कृष्ण गली में वे रहते हैं।

विश्वनाथ : पर कृष्ण गली तो यहाँ छह हैं। कौन-सी गली में बताया था?

नन्हेंमल : छह हैं! बहुत बड़ा शहर है साहब! हमें तो यह मालूम नहीं है, शायद बताया हो। याद नहीं रहा।

विश्वनाथ : (खीझकर) जिसके यहाँ आपको जाना है, उसका नाम तो बताया होगा?

बाबूलाल : क्या नाम था चाचा?

नन्हेंमल : नाम तो याद नहीं आता। जरा ठहरिये, सोच लूँ।

बाबूलाल : अरे, चाचा, कविराज या कवि बताया था। मैं उस समय नहीं था। सामान लेने घर गया था। तुम्हीं ने रेल में बताया था।

नन्हेंमल : हाँ साहब, कविराज बताया था। आप तो बेकार में शक में पड़े हैं, हम कोई चोर थोड़े ही हैं।

बाबूलाल : चोर छिपे थोड़े ही रहते हैं। पण्डित जी, क्या बतायें हमारे घर चलकर देख लें, तो पता लगेगा कि हम भी .....

नन्हेंमल : चुप, एक बीड़ी और निकाल, बाबू।

बाबूलाल : यह लो।

विश्वनाथ : लेकिन मैं कविराज तो नहीं हूँ?

दोनों : (चिल्लाकर) तो कवि ही बताया होगा, साहब।

नन्हेंमल : हमें याद नहीं आ रहा। हमें तो जो पता दिया था उसी के सहारे आ गये। नीचे आवाज लगायी और आप मिल गये, ऊपर चढ़ आये। पहले हमने सोचा होटल या धर्मशाला में ठहर जायँ। फिर सोचा, घर के ही तो हैं। चलो, घर चलें।

विश्वनाथ : जिनके यहाँ आपको जाना था, वह काम क्या करते हैं?

नन्हेंमल : काम? क्या काम बताया था, बाबू?

बाबूलाल : मेरे सामने तो कोई बात नहीं हुई। मैं तो सामान लेने चला गया था। आप तो पण्डित जी, शायद वैद्य हैं।

नन्हेंमल : हाँ याद आया। बताया था वैद्य हैं।

विश्वनाथ : पर मैं तो वैद्य नहीं हूँ।

प्रमोद : पिछली गली में एक कविराज वैद्य रहते हैं।

विश्वनाथ : हाँ, हाँ, ठीक, कहीं आप कविराज रामलाल वैद्य के यहाँ तो नहीं आये हैं?

दोनों : (उठकर) अरे हाँ, वही तो कविराज रामलाल।

विश्वनाथ : शायद वह उधर के हैं भी।

नन्हेंमल : ठीक है, साहब, ठीक है। वही हैं। मैं भी सोच रहा था कि आप न सम्पतराम को जानते हैं, न जगदीशप्रसाद को–(प्रमोद से) कहाँ है उन कविराज का घर?

विश्वनाथ : जाओ, इन्हें उनका मकान बता दो। मैं भीतर हो आऊँ।

दोनों : चलो, जल्दी चलो भैया, अच्छा साहब, राम-राम।

विश्वनाथ : (भीतर से ही) राम-राम।

रेवती : अब जान में जान आयी। हाय, सिर फटा जा रहा है।

(नीचे से आवाज आती है)

(नेपथ्य) में) भले आदमी, जाने कहाँ मकान लिया है ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आधी रात हो गयी।

रेवती : फिर, फिर अरे (प्रसन्न होकर), अरे भैया हैं। आओ, तुमने तो खबर भी न दी।

आगन्तुक : रेवती! (दोनों मिलते हैं) (विश्वनाथ से) पिछले चार घण्टे से बराबर मकान खोज रहा हूँ। क्या मेरा तार नहीं मिला?

विश्वनाथ : नहीं तो, कब तार दिया?

आगन्तुक : कल ही तो, झाँसी से दिया था। सोचता था कि ठीक समय पर मिल जायगा। ओह, बड़ी परेशानी हुई।

रेवती : लो कपड़े उतार डालो। पंखा करती हूँ। अरे प्रमोद, जा जल्दी से बर्फ तो ला। मामा जी को ठण्डा पानी पिला और देख, नुक्कड़ पर हलवाई की दुकान खुली हो तो·····

आगन्तुक : भाई बहुत बड़ा शहर है। वह तो कहो, मैं भी ढूँढ़कर ही रहा, नहीं तो न जाने कहीं होटल या धर्मशाला में रहना पड़ता। बड़ी गर्मी है। मैं जरा नहाना चाहता हूँ।

विश्वनाथ : हाँ, हाँ, अवश्य। सामने चले जाइये।

आगन्तुक : एक बार तो जी में आया कि सामने होटल में ठहर जाऊँ। शायद रात को आप लोगों को कष्ट हो।

रेवती : ऐसा क्यों सोचते हो। कष्ट काहे का। यह तो हम लोगों का कर्त्तव्य था। अच्छा, तुम तैयार होओ, मैं खाना बनाती हूँ।

आगन्तुक : भई देखो, इस समय खाना-वाना रहने दो। मैं पानी पीकर सो जाऊँगा। वैसे मुझे भूख भी नहीं है।

रेवती : (जाती हुई लौटकर) कैसी बातें करते हो, भैया! मैं अभी खाना बनाती हूँ।

आगन्तुक : इतनी गर्मी में! रहने दो न।

विश्वनाथ : तुम नहाने तो जाओ। (आगन्तुक जाता है) (रेवती से) कहो, अब?

रेवती : अब क्या–मैं खाना बनाऊँगी। भैया भूखे नहीं सो सकते।

(यवनिका)

अभ्यास प्रश्न

● समीक्षात्मक प्रश्न

1. 'नये मेहमान' एकांकी का सारांश लिखिए।

अथवा

उदयशंकर भट्ट द्वारा लिखित एकांकी की कथावस्तु या कथानक अपने शब्दों में लिखिए।

2. 'नये मेहमान' एकांकी के प्रमुख पात्र विश्वनाथ का चरित्र-चित्रण कीजिए।
3. 'नये मेहमान' एकांकी के आधार पर रेवती का चरित्र-चित्रण कीजिए।
4. नन्हेंमल और बाबूलाल का चरित्र-चित्रण कीजिए।
5. कथा-संगठन के विकास को दृष्टिगत रखते हुए 'नये मेहमान' एकांकी की विशेषताएँ लिखिए।

6. 'नन्हेंमल और बाबूलाल अपनी वाचालता के दम पर अपना उल्लू सीधा करने की सामर्थ्य रखते हैं।' 'नये मेहमान' एकांकी के आधार पर सिद्ध कीजिए।
7. उदयशंकर भट्ट के जीवन और कृतियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

● लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'नये मेहमान' एकांकीकार के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
2. 'नये मेहमान' वास्तव में कौन हैं? सप्रमाण एवं सतर्क उत्तर दीजिए।
3. यह एकांकी हास्यप्रधान है या समस्याप्रधान, प्रमुख कारणों सहित उत्तर दीजिए।
4. पराये मेहमान और अपने मेहमान के लिए रेवती के भावों का अन्तर स्पष्ट कीजिए।
5. 'नये मेहमान' एकांकी के शीर्षक की सार्थकता पर प्रकाश डालिए।
6. विश्वनाथ मेहमानों के आगमन से क्यों प्रसन्न नहीं था?
7. विश्वनाथ मेहमानों से स्पष्ट परिचय पूछने से क्यों हिचकता था?
8. बड़े नगरों में विश्वनाथ-जैसी स्थिति के लोगों के जीवन पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
9. कल्पना कीजिए कि नन्हेंमल और बाबूलाल आपके घर पधारते हैं तो उनके साथ कैसा व्यवहार करेंगे? अपने शब्दों में लिखिए।
10. 'नये मेहमान' एकांकी के दस सुन्दर वाक्य लिखिए।

● वस्तुनिष्ठ प्रश्न

सही उत्तर के सम्मुख सही (✓) का चिह्न लगाइये–

1. **नन्हेंमल और बाबूलाल विश्वनाथ के घर गये थे, क्योंकि–**
   (अ) वे ठग थे और रात को चोरी करना चाहते थे। ( )
   (ब) वे रात बिताना चाहते थे। ( )
   (स) गन्तव्य स्थान का नाम-पता भूल गये थे। ( )
2. **नन्हेंमल और बाबूलाल को पहचानने से विश्वनाथ ने इन्कार नहीं किया, क्योंकि–**
   (अ) उसे उन पर दया आ गयी। ( )
   (ब) उसे डर था कि दोनों नाराज हो जायँगे। ( )
   (द) उसे सन्देह था कि ये दोनों सचमुच ही उसके किसी सम्बन्धी द्वारा भेजे गये हैं। ( )
3. **विश्वनाथ के पड़ोसी उससे नाराज रहते थे, क्योंकि–**
   (अ) वे स्वभाव से ही दुष्ट थे। ( )
   (ब) उनके घर मेहमान नहीं आते थे। ( )
   (स) मेहमान आने से उन्हें असुविधा होती थी। ( )
4. **रेवती दूसरे आगन्तुक के लिए खाना तुरन्त बनाती है, क्योंकि–**
   (अ) उससे कुछ लाभ मिलना था। ( )
   (ब) वह रेवती का भाई था। ( )
   (स) विश्वनाथ ने स्पष्ट निर्देश दिया था। ( )
5. **रेवती मेहमानों के लिए खाना नहीं बनाना चाहती थी, क्योंकि–**
   (अ) सचमुच उसे सिर-दर्द था। ( )
   (ब) देर रात खाना बनाना सम्भव नहीं था। ( )
   (स) मेहमानों से उसे आत्मीयता नहीं थी। ( )

● आन्तरिक मूल्यांकन

1. विश्वनाथ के स्थान पर आप होते तो कैसा अनुभव करते? अपने विचार अभिव्यक्त कीजिए।
2. एकांकी और नाटक में क्या अन्तर है? स्पष्ट कीजिए।

3 सेठ गोविन्ददास

जीवन-परिचय—सेठ गोविन्ददास का जन्म सन् 1896 ई0 में मध्य प्रदेश राज्य के जबलपुर शहर में हुआ था। इन्होंने घर पर रहकर ही हिन्दी और अंग्रेजी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था। इनके घर का वातावरण आध्यात्मिकता की भावना से परिपूर्ण था। बाल्यावस्था से ही आप अपने परिवार के बीच रहते हुए वल्लभ सम्प्रदाय के धार्मिक उत्सवों, रास लीलाओं और नाटकों का आनन्द लेते रहे। नाटक लिखने की प्रेरणा भी इन्हें यहीं से प्राप्त हुई। साहित्य में रुचि होने के साथ ही इन्होंने देश के स्वाधीनता-आन्दोलन में भी सक्रिय रूप से भाग लिया और अनेक बार जेल गये। अनेक रचनाएँ इन्होंने जेल में ही लिखीं। सन् 1947 ई0 में देश के स्वतन्त्र होने पर संसद् सदस्य हुए और जीवनपर्यन्त इस पद पर बने रहे। हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होने के आप पक्षधर रहे। हिन्दी के प्रति आपका लगाव इसलिए था, क्योंकि यह भारत के विस्तृत भू-भाग में बोली जानेवाली ही भाषा नहीं थी, अपितु स्वाधीनता-आन्दोलन की भाषा भी थी। सन् 1974 ई0 में आपका निधन हो गया।

लेखक-एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**—सन् 1896 ई0।
- **स्थान**—जबलपुर (म0 प्र0)।
- संसद् सदस्य रहे।
- **पहला नाटक**—'विश्व-प्रेम'।
- **मृत्यु**—सन् 1974 ई0।

कृतियाँ—सेठ जी ने अधिकांशतः नाटक एवं एकांकियाँ ही लिखी हैं। 'विश्व-प्रेम' आपके द्वारा लिखा गया सर्वप्रथम नाटक है, जिसे अपने परिवार द्वारा स्थापित श्री शारदा भवन पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव के लिए लिखा था। पाश्चात्य नाटककार बर्नार्ड शॉ, इब्सन व ओनील की नाट्य-शैलियों का आपके नाटकों पर विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है, फिर भी आपके नाटकों की मुख्य धारा भारतीयता पर ही आधारित है। आपके नाटकों के विषय पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और राजनीतिक धरातल तक फैले हुए हैं। कुछ एकांकी एकपात्रीय हैं। भाषा पात्रानुकूल, सरल एवं सहज है। आप गाँधीवाद से भी प्रभावित रहे हैं। आपकी प्रमुख एकांकियाँ हैं—'सप्त रश्मि', 'एकादशी', 'पंचभूत', 'चतुष्पथ' और 'आप बीती जग बीती' आदि।

साहित्यिक अवदान—सेठ जी ने लेखन के अतिरिक्त सांसद के रूप में भी आजीवन हिन्दी की उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया। आपके एकांकी विचारों को जन्म देनेवाले हैं। काल-संकलन के प्रति आप अधिक सजग दिखायी देते हैं। अधिकांश एकांकी अनेक दृश्योंवाले हैं, जिनमें से कुछ में उपसंहार और उपक्रम की व्यवस्था है। आपके कुछ एकांकी व्यंग्य-विनोद-प्रधान, तो कुछ पात्रों की अन्तर्वृत्तियों का विश्लेषण करते दिखायी पड़ते हैं। आपके एकांकियों के कथानक जीवन्त एवं प्रभावपूर्ण हैं।

व्यवहार

पात्र-परिचय

रघुराजसिंह	:	एक ज़मींदार
नर्मदाशंकर	:	रघुराजसिंह के स्टेट का मैनेजर
चूरामन	:	एक किसान
क्रान्तिचन्द्र	:	चूरामन का पुत्र

पहला दृश्य

स्थान

नगर में रघुराजसिंह के महल की एक बालकनी

समय

प्रातःकाल

एक विशाल बालकनी का जो हिस्सा दिखायी देता है वह सुन्दरता से बना और सजा हुआ है। उसके खम्भे संगमरमर के हैं और रेलिंग बीड़ की रँगी हुई। फर्श आर्टीफिशल मार्बल का बना है, जिसमें रंग-बिरंगे बेल-बूटे हैं। छत पर चूने की नक्काशी है और उससे बिजली की कई बत्तियाँ झूल रही हैं, जिनके शेड बेशकीमती हैं। एक बिजली का सीलिंग फैन भी लटक रहा है। पीछे की रेलिंग के निकट ही वृक्षों के ऊपरी भाग दीख पड़ते हैं, जिससे जान पड़ता है कि बालकनी तीसरी या चौथी मंजिल पर है। बालकनी में लकड़ी का एक फैन्सी झूला, सोफा-सेट, टेबिलें आदि सुन्दरता से सजी हैं। कुछ चीनी-मिट्टी के गमले भी रखे हैं, जो भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधों से भरे हुए हैं। बालकनी की बनावट और सजावट को देखने से वह किसी अत्यन्त सम्पन्न व्यक्ति के महल का एक भाग जान पड़ती है। रघुराजसिंह बालकनी के एक कोने में खड़ा हुआ एक छोटी-सी फैन्सी दूरबीन से पीछे के दरख्तों के परे की कोई वस्तु देख रहा है। रघुराजसिंह करीब 25 वर्ष की अवस्था का, गौर वर्ण, ऊँचा-पूरा, किन्तु दुबला सुन्दर मनुष्य है। वह एक ढीली बाँहों का पतला-सा कुरता और चूड़ीदार पाजामा पहने हुए है। उसका सिर खुला हुआ, जिस पर लम्बे बाल लहरा रहे हैं। छोटी-छोटी मूँछें हैं और आँखों पर मोटे फ्रेम का चश्मा। उसके नज़दीक ही नर्मदाशंकर खड़ा हुआ है। नर्मदाशंकर की उम्र लगभग 65 वर्ष की है। यह साँवले रंग, ठिगने कद का मोटा आदमी है। सिर पर बड़ा-सा साफ़ा बाँधे है और शरीर पर शेरवानी तथा पाजामा पहने है। उसके बड़े-से मुख में उसकी छोटी-छोटी आँखें और बड़ी-बड़ी सफेद मूँछें एक खास स्थान रखती हैं।

रघुराजसिंह : *(दूरबीन से देखते-देखते)* भोज की ठीक तैयारी हो रही है, मैनेजर साहब, बहन के विवाह में किसानों की यह दावत मैं विवाह का सबसे बड़ा काम मानता हूँ। *(कुछ रुककर)* कुल मिलाकर कितने किसान आवेंगे?

नर्मदाशंकर : पच्चीस हजार से कम नहीं, राजा साहब, आपने उन्हें मय बाल-बच्चों के आने का निमन्त्रण जो भेजा है।

रघुराजसिंह : *(दूरबीन से देखते-देखते ही)* क्यों, पहले की शादियों में किसानों को कुटुम्ब-सहित निमन्त्रित नहीं किया जाता था?

नर्मदाशंकर : कभी नहीं, सिर्फ़ मर्द बुलाये जाते थे, वे भी चुने हुए घरों के, और घर-पीछे एक आदमी।

रघुराजसिंह : *(दूरबीन से देखते-देखते ही)* पर यह गलत बात थी, मैनेजर साहब, सिर्फ मर्दों को, और वह भी चुने हुए घरों के तथा घर-पीछे एक ही आदमी को बुलाने का क्या अर्थ है?

नर्मदाशंकर : अर्थ तो सभी पुरानी बातों का है, राजा साहब! *(कुछ रुककर)* हाँ, एक कठिनाई जरूर है।

रघुराजसिंह : *(दूरबीन आँखों के सामने से हटाकर, नर्मदाशंकर की ओर देख)* कैसी कठिनाई, मैनेजर साहब?

नर्मदाशंकर : *(गला साफ़कर कुछ भर्राये हुए स्वर में)* आप माफ़ करें तो कहूँ।

रघुराजसिंह : आप मेरे पिताजी के समय से काम कर रहे हैं, शायद चालीस वर्ष आपको काम करते-करते बीत गये। मैं आपके सामने पैदा हुआ। पिताजी की मृत्यु के बाद मेरी नाबालगी में आपने ही कुल काम किया, आज भी आप ही मैनेजर हैं, आपको मैं अपना बुजुर्ग मानता हूँ; आपको कोई बात कहने के पहले माफ़ी माँगने की जरूरत है?

नर्मदाशंकर : मैं आपकी कृपा का हाल जानता हूँ, राजा साहब, इसीलिए आज कुछ कहने की हिम्मत कर रहा हूँ। जो-जो बातें पहले होती थीं उनके कारण ही *(बालकनी की ओर इशारा कर)* ये महल-महलात, यह वैभव और ऐश्वर्य नज़र आता है। विवाह में घर-पीछे एक किसान और वह भी चुने हुए घरों के किसानों को, निमन्त्रण देने का सवाल नहीं है, प्रश्न है कार्य की सारी पद्धति का।

रघुराजसिंह : अच्छा, तो जिस पद्धति से मैं काम कर रहा हूँ वह आप मुनासिब नहीं समझते?

नर्मदाशंकर : *(सहमे हुए स्वर में)* बात तो ऐसी ही है और समय-समय पर मैं अपनी राय का संकेत भी करता आया हूँ।

रघुराजसिंह : *(कुछ याद करते हुए)* हाँ, मुझे याद आ रहा है। काम सँभालते ही जब मैंने किसानों पर का सारा कर्ज़ माफ किया तब वह बात आपको पसन्द नहीं आयी थी।

रघुराजसिंह : *(विचारते हुए)* परन्तु आखिर उस कर्ज में से कितना कर्ज वसूल होता?

नर्मदाशंकर : सवाल कर्ज़ की वसूली का नहीं है।

रघुराजसिंह : तब?

नर्मदाशंकर : किसानों पर उस कर्ज़ के कारण दबाव था, वह चला गया।

रघुराजसिंह : ओह! तो अपना कोई फायदा न होने पर किसानों को कुचलकर रखना ही पुरानी पद्धति का अर्थ है।

नर्मदाशंकर : नहीं, राजा साहब, ऐसी बात नहीं है।

रघुराजसिंह : तब?

नर्मदाशंकर : बिना किसानों पर दबाव रखे हम ज़मींदारी से कोई लाभ उठा ही नहीं सकते।

(कुछ देर निस्तब्ध)

रघुराजसिंह : *(गम्भीरता से विचारते हुए)* और जिन ज़मीनों पर ज्यादा लगान था, मेरा उनका लगान घटाना भी आपको पसन्द न आया होगा।

नर्मदाशंकर : किसी ज़मीन पर ज्यादा लगान था ही नहीं, राजा साहब।

रघुराजसिंह : किसी ज़मीन पर ज्यादा लगान नहीं था?

नर्मदाशंकर : किसी पर भी नहीं।

रघुराजसिंह : तो जो किसान इतना रोते और बिलखते थे, वह सब उनका ढोंग था?

नर्मदाशंकर : बिल्कुल ढोंग, राजा साहब।

रघुराजसिंह : इतने मनुष्य झूठे आँसू बहाते थे?

नर्मदाशंकर : आप इन किसानों से अभी वाकिफ नहीं हैं, राजा साहब, ये क्या-क्या कर सकते हैं, आप जानते नहीं। आँखों में दवा डाल कर ये आँसू बहा सकते हैं।

(कुछ देर फिर निस्तब्धता)

रघुराजसिंह : *(विचारते हुए)* और जिन गरीब किसानों को मैंने बिना कोई नज़राना लिये ज़मीन दी, वह भी गलती की?

नर्मदाशंकर : वे इतने ग़रीब थे ही नहीं, राजा साहब कि नज़राना न दे सकें।

रघुराजसिंह : पर कितने किसानों ने उनकी सिफ़ारिश की थी?

नर्मदाशंकर : चोर-चोर मौसेरे भाई, राजा साहब।

(फिर कुछ देर निस्तब्धता)

रघुराजसिंह : और आज विवाह के उपलक्ष्य में मैंने कुटुम्ब सहित किसानों को जो भोज दिया, इसमें क्या गलती है?

नर्मदाशंकर : किसानों का भोज खर्च का नहीं, आमदनी का कारण होता था, वह अब खर्च का कारण हो जायगा।

रघुराजसिंह : अर्थात्?

नर्मदाशंकर : राजा साहब, इस निमन्त्रण में सिर्फ़ सम्पन्न किसानों को बुलाया जाता था। घर-पीछे एक आदमी को निमन्त्रण दिया जाता था। एक मिठाई, एक नमकीन, एक साग, एक गायता और पूड़ी-कचौड़ी उन्हें खिला दी जाती थी। फ्री आदमी मुश्किल से चार आना खाता था। खाने वाले व्यवहार करते थे–कोई एक रुपया, कोई दो, कोई चार, कोई पाँच, कोई सात, कोई ग्यारह और कोई इक्कीस भी। आज के भोज में न जाने कितनी तरह की मिठाइयाँ, नमकीन, तरकारियाँ, रायते, मुरब्बे, अचार, चटनियाँ और भी न जाने क्या-क्या इन्हें खिलाया जायगा। सम्पन्न कम और दरिद्र अधिक आयेंगे, फिर उनका पूरा कुटुम्ब खायेगा। व्यवहार देने वाले कितने होंगे?

रघुराजसिंह : *(आश्चर्य से)* व्यवहार! आप इनसे व्यवहार लेंगे?

नर्मदाशंकर : *(और भी आश्चर्य से)* क्यों? व्यवहार नहीं लिया जायगा?

रघुराजसिंह : कभी नहीं।

(नर्मदाशंकर आश्चर्य से स्तम्भित-सा होकर रघुराजसिंह की तरफ देखता है। कुछ देर निस्तब्धता।)

नर्मदाशंकर : *(धीरे-धीरे अत्यन्त भर्राये हुए स्वर में)* लेकिन...लेकिन, राजा साहब, व्यवहार....व्यवहार न लेना तो उन किसानों...किसानों का भी अपमान...अपमान करना....।

दूसरा दृश्य

स्थान : गाँव के एक मकान का कोठा।

समय : प्रातःकाल।

साधारण लम्बाई-चौड़ाई का देहाती मकान का एक कोठा है। तीन ओर की दिखने वाली दीवालों पर गारे की छपाई है, जो छुई मिट्टी से पुती है। कहीं-कहीं दीवालें मैली हो गयी हैं। पीछे की दीवाल में ऊपर की तरफ दो छोटी-छोटी खिड़कियाँ हैं, जिनमें लकड़ी के भद्दे से जँगले हैं। खिड़कियाँ ऊपर होने के कारण खिड़कियों के बाहर क्या है, यह दिखायी नहीं देता। दाहिनी ओर की दीवाल में एक छोटा-सा दरवाजा है, जिसकी चौखट और किवाड़ देहाती ढंग के बने हैं। दरवाजा बन्द है। छत पर बाँसों का पटाव है, जिस पर गारा छपा हुआ है और छुई पुती हुई है। इधर-उधर से गारे की छपाई झड़ जाने के कारण बाँस दिखायी देते हैं, जमीन गोबर से लिपी हुई है। तीन तरफ खाली जमीन छोड़कर बीचोबीच पीछे की दीवाल से सटाकर एक लाल रंग की जाजम बिछी हुई है। जाजम इधर-उधर मैली हो गयी है और यत्र-तत्र फट भी गयी है। जाजम पर कई किसान बैठे हुए हैं। इनकी अवस्थाएँ भिन्न-भिन्न हैं और स्वरूप भी अलग-अलग लेकिन कपड़े सबके प्रायः एक से हैं। इनके कपड़ों के कारण देखने वालों को इनके किसान होने में कोई शक नहीं रह जाता। इस समुदाय में एक ही व्यक्ति ऐसा है जो किसान नहीं जान पड़ता। इसका नाम है क्रान्तिचन्द्र। क्रान्तिचन्द्र की अवस्था 22-23 वर्ष से ज्यादा नहीं है। वह साँवले रंग का, ऊँचा पूरा बलिष्ठ व्यक्ति है। उसकी बहुत बड़ी-बड़ी आँखें और कुछ सिकुड़े से ओंठ उसके मुख में एक खास स्थान रखते हैं। वह खाकी रंग की कमीज और निकर पहने है। सिर खुला हुआ है, जिस पर लम्बे सँवारे हुए बाल हैं। क्रान्तिचन्द्र के पास ही उसका पिता चूरामन बैठा है। चूरामन की उम्र करीब 60 वर्ष की है, उसका रंग भी साँवला है। सारा शरीर दुबला और मुख पिचका

हुआ जिसमें उसकी घुसी हुई आँखें उसके मुख को अत्यधिक करुण बना रही हैं। उसकी ओर अन्य किसानों की वेश-भूषा में कोई फर्क नहीं है, इतना ही अन्तर है कि वह कानों में सोने की मुरकियाँ पहने हुए है। क्रान्तिचन्द्र अत्यन्त क्रोध-भरी मुद्रा और अत्यधिक क्रूर दृष्टि से, जो उसकी बड़ी-बड़ी आँखों के कारण और ज्यादा क्रूर हो गयी हैं, चूरामन की तरफ देख रहा है और चूरामन जमीन की ओर। कभी-कभी वह क्रान्तिचन्द्र की तरफ दृष्टि उठाता है, पर ज्योंही वह देखता है कि क्रान्तिचन्द्र उसकी ओर देख रहा है, त्योंही वह अपनी दृष्टि फिर नीचे कर लेता है। बाकी के किसान कभी पिता और कभी पुत्र की तरफ देखते हैं। कोठे में एक विचित्र प्रकार का सन्नाटा छाया हुआ है।

क्रान्तिचन्द्र : *(धीरे-धीरे)* तो निमन्त्रण के ठीक समय तक हम लोग इसी प्रकार मौन बैठे रहेंगे और बाहर बैठे हुए सब लोग हमारे निर्णय की प्रतीक्षा करते रहेंगे?

(कोई कुछ नहीं बोलता। फिर निस्तब्धता)

क्रान्तिचन्द्र : *(कुछ देर बाद, उठते हुए)* अच्छी बात है, आप लोग इसी प्रकार बैठे रहें, मुझे जो कुछ करना ठीक जान पड़ता है, मैं जाकर करता हूँ। *(खड़ा होता है।)*

चूरामन : बैठ, बैठ रेवापरसाद! सुन तो।

क्रान्तिचन्द्र : *(खड़े-खड़े ही, क्रोध से)* मेरा नाम रेवाप्रसाद नहीं है, पिताजी, मैंने कई बार आपसे कह दिया, मैं न किसी का प्रसाद हूँ न किसी का दास।

चूरामन : *(डरते-डरते)* भूल गया, भूल गया, पर तू बैठ तो, किरान्ती चन्दर।

क्रान्तिचन्द्र : *(कुछ शान्ति से)* पर बैठकर करूँ क्या? यहाँ तो सभी ने मौन व्रत धारण कर रखा है।

चूरामन : मउन बिरत की बात नहीं है, बेटा, तूने पिरसन ही ऐसा रखा है कि जवाब सरल काम थोड़ई है।

क्रान्तिचन्द्र : *(बैठते हुए)* मैंने ऐसा प्रश्न रखा है? पिताजी, पिंजरे में बन्दी पक्षी के उड़ने के लिए यदि पिंजरे का द्वार खोल दिया जाय तो द्वार खोलनेवाला कोई समस्या खड़ी नहीं करता। अंधकार में रहने वाले व्यक्ति को यदि प्रकाश में ले आया जाय तो प्रकाश में लाने वाला कोई भूल नहीं करता।

(कोई कुछ नहीं बोलता। फिर निस्तब्धता)

क्रान्तिचन्द्र : *(फिर उठते हुए)* मैं देखता हूँ, यहाँ इस प्रश्न का निर्णय न हो सकेगा। *(खड़ा होता है।)*

एक किसान : तब कहाँ होगा, भैया?

दूसरा किसान : हाँ, सब गाँवन के पंच तो हियाँ बइठे हैं। यहाँ निरनय न होई तो कहाँ होई?

क्रान्तिचन्द्र : *(खड़े-खड़े ही)* दासता की शृंखलाओं में वर्षों नहीं नहीं युगों, नहीं नहीं पीढ़ियों तक बँधे रहने के कारण पंचों में इस प्रश्न के निर्णय की सामर्थ्य नहीं रह गयी है।

तीसरा किसान : तब निरनय कौन करेगा?

क्रान्तिचन्द्र : बाहर खड़ी हुई किसान जनता।

चूरामन : बैठ रेवा, बैठ तो...

क्रान्तिचन्द्र : *(क्रोध से)* फिर...फिर...रेवा, पिताजी...

चूरामन : अरे, भैया, बुढ़ा गया हूँ, भूल जाता हूँ रे।

क्रान्तिचन्द्र : *(कुछ शान्त होते हुए)* पर भूल और उस पर भी भूल, भूलों की झाड़ियों ने ही तो हमारी यह दशा कर दी है। मूल की बातों में भूल होना सबसे बड़ी भूल है।

चूरामन : अच्छा, तू बैठ तो।

(क्रान्तिचन्द्र बैठ जाता है फिर कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।)

क्रान्तिचन्द्र : *(कुछ देर बाद)* फिर सन्नाटा! आप लोगों को हो क्या गया है? एक छोटी-सी बात के निर्णय में इस प्रकार का पशोपेश।

चूरामन : छोटी बात! यह छोटी बात है?

क्रान्तिचन्द्र : और क्या है? जमींदार के निमन्त्रण में जाकर गन्दे घी की मिठाई, चोकर की पूड़ियाँ और सड़े साग खाना छोटी बात नहीं तो कोई बड़ी बात है? फिर यह सब भी किस अपमान से किया जाता है। मुझे अपने छुटपन के एक ऐसे ही निमन्त्रण का स्मरण है। महल के फाटक से ही हमारा अपमान आरम्भ हुआ था। सदर फाटक में तो हम लोग घुसने ही न पाये। एक पुराना टूटा-फूटा फाटक हमारे लिये खोला गया था। हरेक को प्रवेश के पहले अपने निमन्त्रण की टिकट दिखानी पड़ती थी। आपको निमन्त्रण था, पिताजी, मुझे नहीं, इसलिए आपके कितने गिड़गिड़ाने और अनुनय-विनय करने पर मुझे घुसने दिया गया था। वह दृश्य आज भी अनेक बार दृष्टि के सामने घूम जाता है। हम लोगों को घुड़साल में खिलाया गया था, घुड़साल में। घोड़ों की लीद और मूत की दुर्गन्ध से नाक सड़ी जाती थी। उस दुर्गन्ध को इतने वर्षों के पश्चात् भी मेरी नाक तो नहीं भूली है। फटी पत्तलों और फूटे सकोरों में हमें परसा गया था। परसगारी करने वाले हमें इस प्रकार परसते थे, मानो हम कंगर हों और वह भोजन करा हम पर महान् उपकार किया जा रहा हो। भोजन की सामग्री का स्वाद अभी भी मेरी जीभ नहीं भूली है–कह नहीं सकता, घी में मिठाई बनी थी या किसी गन्दे परनाले के पानी में, दही का रायता था या दुई मिट्टी का, साग था कदाचित् सप्ताहों का सड़ा हुआ और पूरियाँ आटे की भी तो नहीं थीं, लकड़ी के बुरादे की हो सकती हैं ऐसे भोजन के पश्चात् हमारे गरीब भाइयों को जो खनाखन व्यवहार का रुपया देना पड़ा था, उसका शबद अभी भी मेरे कानों में गूँज उठता है। पिताजी आप कहते हैं ऐसे निमन्त्रण में न जाने का निर्णय छोटी बात नहीं है; बड़ी, बहुत बड़ी बात है! ओह!

चूरामन : बेटा, पिरसन! मान-अपमान और भोजन का नहीं है।

क्रान्तिचन्द्र : तब?

चूरामन : ज़मींदार का न्योता है, बेटा ज़मींदार का।

क्रान्तिचन्द्र : ऐसा! तो जो आपको लूट रहा है, जो आपका खून पी रहा है, उस लुटेरे, उस डाकू के भय से आप निमन्त्रण में जा रहे हैं?

चूरामन : *(भयभीत स्वर में)* बेटा...बेटा...कैसी...कैसी बातें कर रहा है, क्या पागल हो गया है? इसकूल और कलेज में जाकर क्या लड़के इस तरा से पगले हो जाते हैं? भींतों के भी कान होते हैं, बेटा...थोड़ा...

क्रान्तिचन्द्र : *(आश्चर्य से)* सच्ची बात कहने में काहे का डर, पिताजी? दूसरों के श्रम पर बिना कोई श्रम किये जो तरह-तरह के गुलछर्रे उड़ाते हैं, वे लुटेरे नहीं तो क्या हैं? श्रम करने वाले भूखे और नंगे रहते हैं और ये आरामतलब बिना कोई काम किये अलमस्त। ऐसे लोग खून चूसने वाले नहीं तो और क्या कहे जा सकते हैं। स्कूल और कॉलेज यदि सच्ची वस्तुस्थिति दिखा दें तो क्या वे कोई अपराध करते हैं? दीवालों के कान होते हैं! पिताजी, मैं डरता नहीं हूँ, भय से अधिक बुरी वस्तु मैं संसार में और कोई नहीं मानता। ईंट-चूने, मिट्टी-गारे की दीवालों के नहीं, मनुष्यों के समूहों के सामने मैं ये सब बातें कहने, ऊँचे-से-ऊँचे स्वर में कहने के लिए तैयार हूँ, तैयार ही नहीं, पिताजी, मैंने कही है स्वयं जमींदार के सम्मुख कहने, उसे लिखकर भेजने के लिए प्रस्तुत हूँ।

चूरामन : शिव, शिव! शिव, शिव!

एक किसान : सब धान बाइस पसेरी नहीं होतीं, सब जमींदार एकइसे नहीं होते।

दूसरा किसान : फिर हमारे इन ज़मींदार ने तो काम हाथ में लेते ही हम पर न जाने कित्ते उपकार किये हैं।

तीसरा किसान : इस न्योते को ही देखो न? पहले ब्याह-सादी में छाँट-छाँट कर, छटे घरों के एक-एक आदमी को न्योता जाता था, अब पूरे-के-पूरे गाँवों को न्योता, हर किसान को, किसान के पूरे कुनबे को।

क्रान्तिचन्द्र : ठीक, जान पड़ता है, जमींदार आप सबकी आँखों में धूल डालने में सफल हो गया। यद्यपि मैं कॉलेज से हाल ही में आया हूँ, पर विद्यार्थी की हैसियत से यहाँ आता-जाता तो रहता ही था। जमींदार के काम

सँभालने के पश्चात् उसके द्वारा जो उपकार हुए हैं उन सबका वृत्त में भली-भाँति जानता हूँ और सिद्ध कर सकता हूँ कि उसकी जिन बातों को आप उपकार मानते हैं वे उपकार की न होकर यथार्थ में आपके अपकार की बातें हैं।

एक किसान : *(व्यंग्य से)* ऐसा!

क्रान्तिचन्द्र : जी हाँ। और जो कुछ मैं कहता हूँ उसकी सत्यता सिद्ध करने की सामर्थ्य भी रखता हूँ। उसकी पहली बात जिसे आप उपकार समझते हैं, यही है न कि उसने आप पर जो कर्ज़ था, उसे छोड़ दिया।

एक किसान : हाँ। *(दूसरों की ओर देखकर)* क्यों, भइया।

कुछ किसान : *(एक साथ)* हाँ...हाँ।

क्रान्तिचन्द्र : आप बता सकते हैं, इसमें से कितना कर्ज ऐसा था, जो वसूल हो सकता।

(कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता)

क्रान्तिचन्द्र : जिस वर्ष कर्ज की यह छूट की गयी उस वर्ष गर्मियों की छुट्टी में मैंने अनेक गाँवों में जा-जाकर उन किसानों की स्थिति की जाँच की थी, जिन पर कर्ज छोड़ा गया था। आप सच मानिए, इन किसानों में से सौ में से निन्यानबे ऐसे थे, जिनके पास जमींदार के कर्ज का ब्याज चुकाते-चुकाते भोजन बनाने के टूटे-फूटे बर्तन तक न रहे थे। खेती का जो इक्का-दुक्का सामान था, कंकाल हुए बैल थे, सड़ा या पतला-सा बीज था, वह कानून के अनुसार कर्ज में नीलाम कराया नहीं जा सकता था। फिर जमींदार कर्ज वसूल कहाँ से करता?

एक किसान : पर सौ में एक से तो वसूल कर लेता।

क्रान्तिचन्द्र : यही तो आप समझते नहीं। सौ में से एक से पुराना कर्ज़ वसूल करने की अपेक्षा, पुराना कर्ज छोड़ उन्हें नया कर्ज देकर उनसे ब्याज वसूल करना जमींदार के लिए कहीं अधिक लाभप्रद था।

(सब किसान एक-दूसरे का मुख देखते हैं। फिर सब चूरामन की ओर देखते हैं। वह कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।)

क्रान्तिचन्द्र : *(कुछ देर बाद)* दूसरा उपकार, जो इस जमींदार का आप मानते होंगे, वह कदाचित् उसका कुछ जमीनों का लगान कम करना है?

एक किसान : हाँ, हाँ, यह तो उनका बड़ा भारी काम है।

कुछ किसान : *(एक साथ)* हाँ...हाँ...हाँ...

क्रान्तिचन्द्र : यहाँ भी आप लोग भूल में हैं।

कुछ किसान : *(एक साथ)* कैसे...कैसे?

क्रान्तिचन्द्र : इस सम्बन्ध में भी मैंने जाँच कर ली है। जिनकी ज़मीनों पर लगान कम किया गया, उनमें से सौ में से निन्यानबे किसानों पर बकाया लगान की नालिशें की गयी थीं। ज़मीनों के अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं था। बेदखलियाँ हो सकी थीं, परन्तु वे जमीनें इतनी बुरी दशा में थीं कि बेदखली के पश्चात् कोई उन्हें लेता ही नहीं। जमींदार घर में कितनी जमीन जोतता, अतः लगान कम करके उन्हीं किसानों के पास जमीन रहने देना जमींदार के लिए ज्यादा फायदेमन्द था।

(फिर सब किसान एक-दूसरे का मुख देखने लगते हैं और फिर सब चूरामन की ओर देखते हैं। कोई कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।)

क्रान्तिचन्द्र : आप थोड़ा-सा ध्यान देकर जमींदार की कार्रवाइयों को देखें तो उनका सच्चा रहस्य आपकी समझ में आ जाय।

(फिर कुछ देर निस्तब्धता)

क्रान्तिचन्द्र : तीसरा काम जो इस जमींदार ने किया, वह है कुछ किसानों को बिना नजराने के मुफ्त में जमीनें देना।

(कुछ रुककर)

कुछ किसान : *(एक साथ)* हाँ...हाँ...हाँ...हाँ...

क्रान्तिचन्द्र : मैं आपसे पूछता हूँ यदि जमींदार यह न करता तो करता क्या? आप नहीं जानते कि उसकी हजारों एकड़ जमीन पड़ती पड़ी है। बिना नजराने की जमीनें उठा देने से भी उसकी आमदनी बढ़ी है या घटी? मैंने इस सम्बन्ध में भी सारी बातों का पता लगाया है और इस काम में जमींदार की वार्षिक आय में कोई पच्चीस हजार रुपये की वृद्धि हुई है।

(सब लोग फिर एक-दूसरे की ओर देखकर चूरामन की तरफ देखने लगते हैं।
वह फिर कुछ नहीं बोलता। कुछ देर निस्तब्धता।)

क्रान्तिचन्द्र : अब विवाह के इस निमन्त्रण को ले लीजिए। आप समझते हैं कि छँटे हुए किसानों को ही निमन्त्रण न देकर, हर गाँव के हर किसान को निमन्त्रण दे, जमींदार ने आप सब पर बड़ा प्रेम दर्शाया है। मैं कहता हूँ कि इस दुर्भिक्ष के समय आप पर और विशेषकर गरीब किसानों पर, इससे बड़ा जुल्म सम्भव नहीं था। इसके पिता केवल सम्पन्न किसानों को बुलाते थे। उनसे व्यवहार वसूल होता था। अब सभी बुलाये गये हैं कुटुम्ब सहित। सबसे व्यवहार की वसूली होगी; एक-एक घर से नहीं, घर के प्रत्येक व्यक्ति से। चार आना खिलाकर चार रुपया वसूल किये जायँगे।

एक किसान : भाई, यह तो सच है।

कुछ किसान : *(एक साथ) हाँ...हाँ...हाँ...हाँ...*

(कुछ देर निस्तब्धता)

क्रान्तिचन्द्र : जमींदार और किसान के हित एक-दूसरे के ठीक विरुद्ध हैं। दोनों एक-दूसरे का हित-साधन कर ही नहीं सकते। जो जमींदार डींग मारता है वह लुटेरा और अधिक लूटने और खून चूसने का इच्छुक। हम किसान अधिक संख्या में हैं। जिधर अधिक संख्या होती है वही बल। हमने न सच्ची वस्तुस्थिति समझी है और न अपना बल पहचाना है। शत्रु को मित्र मान, उससे मित्र का-सा व्यवहार, सच्ची वस्तुस्थिति को न पहचानना नहीं तो और क्या है? बल रहते हुए भी अपने को निर्बल समझने से अधिक कौन-सी भूल हो सकती है? जमींदार हमारा शत्रु है, सबसे बड़ा शत्रु। भक्षक और भक्ष्य का कैसा व्यवहार? उनके आपस में कैसे प्रेम? और अपना सच्चा स्वरूप पहचानकर, अपना बल जानकर, यदि हम सब एक होकर इस भोज में सम्मिलित न हों तो जमींदार हमारा क्या कर सकता है? (कुछ रुककर सबकी ओर एक दृष्टि घुमा) मैं कहता हूँ इससे अच्छा अवसर मिल नहीं सकता, जब हम जमींदार को बता दें कि तुम और हम यथार्थ में मित्र नहीं, शत्रु हैं। तुम्हारा हमारा कोई व्यवहार नहीं, तुम्हारे हित और हमारे हित एक-दूसरे के ठीक विपरीत हैं। अब उन्हें पहचान लिया है। अपने-आपको भी हमने जान लिया है। हम अपने रास्ते चलेंगे, तुम अपने रास्ते चलो। तुम एक हो, हम करोड़ों। एक का सातों का सुख भोगना और करोड़ों को अन्न के लिए 'त्राहि-त्राहि' और 'पाहि-पाहि' करना, वस्त्रों के बिना नंगे घूमना, घरों के बिना वृक्षों के नीचे पड़े रहना, यह सदा सम्भव नहीं। तुमने वर्षों नहीं, युगों से हमें लूटा है, हमारा खून पीकर स्वयं लाल हुए हो, हम अब धोखा नहीं खा सकते। तुम्हारा नाश करके ही हम सुखी हो सकते हैं। यह सब स्वयं समझ लेने में ही नहीं, उसे बता देने के पश्चात् ही हमारा कार्य ठीक दिशा में हो सकेगा, क्योंकि उस कार्य के मार्ग का प्रधान रोड़ा भय फिर हमारे सामने रह जायगा।

(क्रान्तिचन्द्र चुप होकर सब की तरफ देखता है। कोई कुछ नहीं बोलता।
सब लोग चूरामन की ओर देखते हैं। चूरामन पृथ्वी की तरफ। कुछ देर निस्तब्धता।)

क्रान्तिचन्द्र : *(अत्यन्त क्रोध से खड़े होकर)* जान पड़ता है आप पंचों को सच्ची वस्तुस्थिति समझ सकना, अपने बल को पहचान कर ठीक दिशा में चलना नहीं सम्भव रह गया है; परन्तु मैं जानता हूँ कि किसान जनता की यह दशा नहीं है। आप थोड़े बहुत सम्पन्न हैं न, इस नाममात्र की सम्पन्नता के कारण जीवन में पड़े

हुए सुख के छोटे-छोटे छींटे भी नहीं छोड़े जाते। इन सुखों के छींटों के सूख जाने का भय आपसे अपने भाइयों के गले पर भी छुरी चलवा रहा है। अपने भाइयों के खून से तर खाने की सामग्री भी आप पंच खाने को तैयार हैं, परन्तु याद रखिए, इस खाने में अब आपके गरीब किसान भाई आपका साथ देने वाले नहीं हैं। किसानों की नब्ज, जितनी दूर तक मैं देख सकता हूँ, आप पंच कहने पर भी नहीं। आपकी ज्ञान-शक्ति स्वार्थ के कारण कुण्ठित जो हो गयी है। आप सच्चे पंच रहे ही कहाँ हैं? *(पीछे की दीवाल की दोनों खिड़कियों के निकट जा उनमें से बाहर की ओर देखते हुए)* बाहर की इस अपार किसान जनता के, पिताजी, आप सच्ची चूड़ामणि हो सकते थे, (लौट कर) पर इतना प्रयत्न करने के पश्चात् मुझे आज मालूम हो गया है कि यह आपके लिए सम्भव नहीं, जाने दीजिए, आपके पाप का प्रायश्चित्त आपका पुण्य करेगा। पंच कहे जाने वाले, इक्के-दुक्के कुल्हाड़ी के बेंट, चाहे जमींदार के भोज में सम्मिलित हो जायँ, पर सच्चे किसान कभी भी उस भोज में न जायँगे। वे उन मिठाइयों, उन पूरी-कचौड़ियों, उन साग-रायतों को हाथ भी न लगायेंगे, जो उनके खून को चूसकर बनाये गये हैं। वह सामग्री चाहे आप पंचों के गले उतर जाय, पर सच्चे किसानों के ओंठों का स्पर्श भी न कर सकेगी। *(दाहिनी ओर की दीवाल के दरवाजे के निकट जाते हुए)* और.... और.... स्मरण रखिएगा कि चाहे आप अपने भाइयों की इच्छा के विरुद्ध उसे खा आवें *(रुककर, बड़े ही क्रूर स्वर में आँखों से आग-सी बरसाते हुए)* पर वह अब आपको हजम न हो सकेगी। उसका एक-एक कण आपके उदरों को चीर-चीरकर निकलेगा और..... और.... *(शीघ्रता से बाहर जाता है।)*

चूरामन : *(मानो किसी नींद से जागा हो)* बेटा!.....बेटा!.....ठैर....ठैर....सुन.....सुन तो *(क्रान्तिचन्द्र को न लौटते देख जल्दी से बाहर जाता है।)*

(भीतर बैठे हुए किसानों में खलबली-सी मच जाती है। सभी उठकर दरवाजे की ओर बढ़ते हैं। नेपथ्य में 'क्रान्तिचन्द्र की जय', 'क्रान्ति अमर हो', 'किसानों की जय', 'जमींदार-प्रथा का नाश हो' इत्यादि के बुलन्द नारे सुनायी देते हैं।)

लघु यवनिका

तीसरा दृश्य

(स्थान : रघुराजसिंह के महल की बालकनी **समय :** मध्याह्न)

वही बालकनी है जो पहले दृश्य में थी। सूर्य तो नहीं दिखता, पर यत्र-तत्र उसमें धूप पड़ती हुई दिखायी देती है, जिससे जान पड़ता है कि दिन चढ़ गया है। रघुराजसिंह अकेला बेचैनी से इधर-उधर टहल रहा है। उसके मुख पर उद्विग्नता के भाव झलक रहे हैं। हाथ में उसके वही दूरबीन है, जो पहले दृश्य में थी। अनेक बार ठहरकर दूरबीन से वह पीछे की दरख्तों के परे कुछ देख लेता है। बदहवासी अवस्था में नर्मदाशंकर का हाथ में एक खुली चिट्ठी लिये हुए जल्दी से प्रवेश।

नर्मदाशंकर : राजा साहब! राजा साहब!

रघुराजसिंह : *(टहलना बन्द कर, नर्मदाशंकर की ओर बढ़कर)* कहिए..... कहिए, मैनेजर साहेब, किसानों का कोई पता.....

नर्मदाशंकर : जी हाँ। *(चिट्ठी रघुराजसिंह को देकर) यह पता है।*

रघुराजसिंह चिट्ठी लेकर उसे पढ़ने क्या, आँखों से पानी से लगता है। एक पंक्ति के एक सिरे से दूसरे सिरे तक और एक पंक्ति के बाद दूसरी पंक्ति पर नाचती हुई उसकी आँखों की पुतलियों से उसके हृदय के उद्वेग का पता चलता है। बड़ी-सी चिट्ठी को वह सेकण्डों में पढ़ डालता है। उसे पूरा करते-करते उससे खड़ा नहीं रहा जाता; वह पहले कुरसी पकड़ता है और फिर एकाएक कुरसी पर बैठ जाता है। कुरसी पर बैठकर वह फिर से चिट्ठी पढ़ता है। अब उसका सिर झुक जाता है। नर्मदाशंकर एकटक रघुराजसिंह की सारी मुद्रा को देखता रहता है। कुछ देर निस्तब्धता रहती है।)

नर्मदाशंकर : देखा, राजासाहब, देखा, आपने इन किसानों की बदमाशी को देखा? आप इन पर प्राण देते हैं। इनके थोड़े से लाभ के लिए अपनी ज्यादा-से-ज्यादा हानि करने के लिए तैयार रहते हैं। काम सँभालने के बाद आपने इन बदलावों के लिए क्या नहीं किया? पर.... पर, राजा साहब, लातों के देव बातों से थोड़े ही सीधे रहते हैं। जमींदार की बहन के विवाह-भोज का किसानों द्वारा बहिष्कार! एक भी किसान का न आना! और ऐसी....आह! ऐसी चिट्ठी, बेहूदगी ज्यादा-से-ज्यादा बेहूदगी भरी हुई चिट्ठी भेजना! इन दो कौड़ी के किसानों की यह मजाल! इनकी यह हिम्मत! इनका यह साहस! इनकी यह हिमाकत! ओह! जमींदारों के सिरमौर इस घराने की आज क्या इज्जत रह गयी? दूसरे जमींदार हम पर किस प्रकार हँसेंगे? हमारी कैसी खिल्ली उड़ेगी? हमारा कैसा मजाक उड़ाया जायगा? ओह! ओ.....

रघुराजसिंह : *(एकाएक खड़े होकर, पत्र को देखते हुए)* पर..पर...मैनेजर साहब, 'किसानों के प्रतिनिधि क्रान्तिचन्द्र' ने ठीक तो लिखा है—'भक्षक और भक्ष्य का कैसा व्यवहार?' मेरी गलती थी जो मैं यह समझता था कि किसानों का मैं हित कर सकता हूँ।

जमींदार रहते हुए कोई जमींदार किसानों का हित नहीं कर सकता। मुझे.... तो अब दूसरी ही बात सोचनी है।

नर्मदाशंकर : *(आश्चर्य से) कैसी?*

रघुराजसिंह : *(टहलते हुए)* मैं जमींदार रहना चाहता हूँ तो सच्चा जमींदार रहकर अपना, अपने साढ़े तीन हाथ के शरीर का, अपने छोटे कुटुम्ब का हित करूँ या... या... *(चुप हो जाता है।)*

नर्मदाशंकर : या

रघुराजसिंह : या... या.... इस जमींदारी की तौक को गले से निकाल, जिनके हित की मैं डींग मारता हूँ, उन्हीं का सही, उन्हीं के सच्चे हित में अपना जीवन... अपना जीवन व्यतीत कर दूँ।

नर्मदाशंकर : *(अत्यधिक आश्चर्य से चिल्लाकर)* राजा साहब! राजा साहब.....

(रघुराजसिंह गम्भीर मुद्रा से सिर नीचा कर इधर-उधर टहलने लगता है।
नर्मदाशंकर आश्चर्य से स्तम्भित-सा रघुराजसिंह की ओर देखता रहता है।)

यवनिका

समाप्त

अभ्यास प्रश्न

● समीक्षात्मक प्रश्न

1. सेठ गोविन्ददास का परिचय देते हुए उनके कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

2. 'व्यवहार' एकांकी की कथावस्तु संक्षेप में लिखिए।

अथवा

सेठ गोविन्ददास द्वारा लिखित एकांकी 'व्यवहार' का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।

3. 'व्यवहार' एकांकी का कथासार लिखते हुए बताइए कि एकांकीकार के अनुसार व्यवहार क्या है?

4. 'व्यवहार' एकांकी के कथा संगठन की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

अथवा

'व्यवहार' एकांकी के कथानक की समीक्षा कीजिए।

5. 'व्यवहार' एकांकी के सर्वश्रेष्ठ पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।

6. 'व्यवहार' एकांकी के आधार पर रघुराजसिंह का चरित्र-चित्रण कीजिए।

7. 'व्यवहार' एकांकी के आधार पर नर्मदाशंकर का चरित्र-चित्रण कीजिए।

● लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'व्यवहार' एकांकी के शीर्षक की उपयुक्तता पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।
2. 'व्यवहार' एकांकी के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
3. 'व्यवहार' एकांकी के द्वारा क्या सन्देश दिया गया है?
4. 'व्यवहार' एकांकी में कितने दृश्य हैं? प्रत्येक दृश्य से पाँच-पाँच सुन्दर वाक्य लिखिए।
5. 'व्यवहार' एकांकी के अनुसार व्यवहार की उचित परिभाषा क्या है?
6. 'व्यवहार' एकांकी के अध्ययन से आपके हृदय पर क्या प्रभाव पड़ा?
7. चूरामन का चरित्र-चित्रण कीजिए।
8. क्रान्तिचन्द्र का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

● वस्तुनिष्ठ प्रश्न

नोट : सही उत्तर के सम्मुख सही ( ) का चिह्न लगाइए–

1. **'व्यवहार' एकांकी का दूसरा दृश्य है–**
   (अ) गाँव के एक मकान का कोठा ( )
   (ब) नगर में रघुराजसिंह के महल की एक बालकनी ( )
   (स) रघुराजसिंह के महल की बालकनी ( )
2. **'व्यवहार' एकांकी में रघुराजसिंह हैं–**
   (अ) मैनेजर ( )
   (ब) जमींदार ( )
   (स) किसान ( )
3. **'कभी नहीं, सिर्फ मर्द बुलाये जाते थे, वे भी चुने हुए घरों के, और घर-पीछे एक आदमी' यह कथन किसका है?**
   (अ) क्रान्तिचन्द्र ( )
   (ब) चूरामन ( )
   (स) नर्मदाशंकर ( )
4. **जमींदार रघुराजसिंह किसानों के हित में काम किया था–**
   (अ) किसानों का लगान माफ कर दिया था। ( )
   (ब) किसानों के लिए सड़क बनवा दी थी। ( )
   (स) किसानों के मकान पक्के करवा दिये थे। ( )
5. **जमींदार के खिलाफ किसानों को भड़काने के लिए जिम्मेदार है–**
   (अ) क्रान्तिचन्द्र ( )
   (ब) चूरामन ( )
   (स) नर्मदाशंकर ( )

❖

4 उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

जीवन-परिचय—प्रसिद्ध नाटककार एवं एकांकीकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का जन्म 14 दिसम्बर, 1910 ई0 को जालन्धर (पंजाब) में एक मध्यवर्गीय ब्राह्मण परिवार में हुआ था। डी0 ए0 वी0 कॉलेज जालन्धर से बी0 ए0 करने के बाद अध्यापन और फिर लाहौर में पत्रकारिता किया। 1936 ई0 में कानून की परीक्षा में विशेष योग्यता लेकर उत्तीर्ण हुए। 1939-41 ई0 तक 'प्रीत लड़ी' के उर्दू-हिन्दी संस्करणों का सम्पादन किया। 1941-44 ई0 तक ऑल इण्डिया रेडियो दिल्ली में नाटककार और हिन्दी सलाहकार के रूप में रहे। 1944 ई0 में 'सैनिक समाचार' के हिन्दी संस्करण का सम्पादन किया। 1944-46 ई0 तक 'फिल्मिस्तान' (मुम्बई) में पटकथा और गीत लिखने के साथ-साथ अभिनय किया। 1947 ई0 में यक्ष्मा रोग से ग्रस्त होकर पंचगनी सेनेटोरियम में रहे। 1948 में रोग-मुक्त होकर इलाहाबाद (उ0 प्र0) में स्थायी निवास बनाया और पूर्ण रूप से लेखन-कार्य में जुट गये। 1951 ई0 में प्रगतिशील लेखक संघ के स्वागताध्यक्ष हुए। 1965 ई0 में केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा सम्मानित किये गये। 1972 ई0 में 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार' आपको प्राप्त हुआ। 1974 ई0 में उ0 प्र0 हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा 'साहित्य वारिधि' की उपाधि दी गयी। 1980 ई0 में आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के मानद प्रोड्यूसर हुए। 1956-83 ई0 के बीच रूस, इंग्लैण्ड, जर्मनी, हॉलैण्ड, मॉरिशस और पाकिस्तान की यात्राएँ आपने कीं। 19 जनवरी, 1996 ई0 को आप गोलोकवासी हो गये।

लेखक-एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**—14 दिसम्बर, 1910 ई0।
- **जन्म-स्थान**—जालन्धर (पंजाब)।
- कई देशों की यात्राएँ कीं सन् 1956 से 1983 के बीच।
- **मृत्यु**—19 जनवरी, 1996 ई0।

कृतियाँ—'अश्क' जी की लेखन-शक्ति प्रौढ़ और भाव-जगत् व्यापक है। इन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, कविता, निबन्ध, संस्मरण आदि सभी क्षेत्रों में विपुल साहित्य का निर्माण किया है किन्तु इनकी उपलब्धि नाटक, एकांकी, उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में विशेष महत्त्वपूर्ण है। नाटक के प्रति आपकी रुचि बचपन से ही थी। 'अश्क' जी के लगभग 11 नाटक और 40 एकांकी प्रकाशित हो चुके हैं। इनके नाटकों में 'बड़े खिलाड़ी', 'अंजो दीदी', 'अलग-अलग रास्ते', 'जय-पराजय', 'आदि मार्ग', 'पैंतरे', 'छठा बेटा', 'स्वर्ग की झलक', 'भँवर', 'अन्धी गली', 'मेरा नाम बिएट्रिस है' आदि हैं।

आपकी प्रमुख एकांकियों में 'पर्दा उठाओ : पर्दा गिराओ', 'चरवाहे', 'तौलिये', 'चिलमन', 'कइसा साब : कइसी आया', 'मैमूना', 'मस्केबाजी का स्वर्ग', 'कस्बे का क्रिकेट क्लब का उद्घाटन', 'सूखी डाली', 'चुम्बक', 'अधिकार का रक्षक', 'तूफान से पहले', 'लक्ष्मी का स्वागत', 'किसकी बात', 'पापी', 'दो कैप्टन', 'गुंजलक', 'नानक इस संसार में……' आदि हैं।

साहित्यिक अवदान—'अश्क' जी ने मध्यवर्गीय जीवन का चित्रण बड़ी सूक्ष्मता से किया है। सामाजिक और व्यक्तिगत दुर्बलताओं पर प्रहार करनेवाले व्यंग्य और प्रहसन एकांकी भी लिखे हैं। इनमें चरित्र-चित्रण की मनोवैज्ञानिक गहराई रहती है।

रंगमंच की दृष्टि से अश्क जी के एकांकी बहुत सफल हैं। वे प्रायः जीवन की अति साधारण और परिचित समस्याओं-घटनाओं पर निर्मित होते हैं और बिना कल्पना का सहारा लिये ही मन में उतर जाते हैं। इनके संवाद आडम्बरहीन, चुस्त और सहज होते हैं। उनमें बोलचाल की सहजता, प्रवाह, आंचलिकता और पात्र की अनुकूलता रहती है।

हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में अश्क जी ने कहा था कि *"मैं 1926 से 1946 ई0 तक लगभग 20 वर्ष उर्दू में लिखता रहा हूँ। जब 1933-34 ई0 में मैंने उर्दू के साथ-साथ हिन्दी में भी लिखना शुरू किया तो मुझे भाषा का कोई ज्ञान नहीं था। 1947 ई0 तक तो मैं अपनी रचनाओं के पहले मसौदे उर्दू ही में तैयार करता रहा–विशेषकर कहानियों और एकांकियों में।"*

लक्ष्मी का स्वागत

पात्र-परिचय

रौशन	:	एक शिक्षित युवक
सुरेन्द्र	:	उसका मित्र
भाषी	:	उसका छोटा भाई
पिता	:	रौशन का बाप
माँ	:	रौशन की माता
अरुण	:	रौशन का बीमार बच्चा
डॉक्टर		

स्थान

जिला जालन्धर के इलाके में मध्यम श्रेणी के एक मकान का दालान

समय

नौ-दस बजे सुबह

(दालान में सामने की दीवार से मेज लगी है, जिसके इस ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है; मेज पर बच्चों की किताबें बिखरी पड़ी हैं। दीवार के दायें कोने में एक खिड़की है, जिस पर मामूली छींट का पर्दा लगा है; बायें कोने में एक दरवाजा है, जो सीढ़ियों में खुलता है। दायीं दीवार में एक दरवाजा है, जो उस कमरे में खुलता है, जहाँ इस समय रौशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है। दीवारों पर बिना फ्रेम की सस्ती तस्वीरें कीलों से जड़ी हुई हैं। छत पर कागज का एक पुराना फानूस लटक रहा है। पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की से बाहर की ओर देख रहा है। बाहर मूसलधार वर्षा हो रही है।)

(हवा की सायँ-सायँ और वर्षा के थपेड़े सुनायी देते हैं। कुछ क्षण बाद वह खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है। फिर जाकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है और पर्दा हटाकर बाहर देखता है। बीमार के कमरे से रौशनलाल प्रवेश करता है।)

रौशन : (दरवाजे को धीरे से बन्द करके) डॉक्टर अभी नहीं आया?

सुरेन्द्र : नहीं।

रौशन : वर्षा हो रही है?

सुरेन्द्र : मूसलधार! जल-थल एक हो रहे हैं।

रौशन : शायद ओले पड़ रहे हैं।

सुरेन्द्र : हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं।

रौशन : भाषी पहुँच गया होगा?

सुरेन्द्र : हाँ, पहुँच ही गया होगा! यह वर्षा और ओले! नदियाँ बह रही होंगी बाजारों में।

रौशन : पर अब तक आ जाना चाहिए था उन्हें। (स्वयं बढ़कर खिड़की के पर्दे को हटाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है— घुटे-घुटे स्वर में) अरुण की तबीयत गिर रही है।

सुरेन्द्र : (चुप)।

रौशन : (उसी आवाज में) उसकी साँस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है; उसका गला जैसे बन्द होता जा रहा है; उसकी आँखें खुली हैं, पर वह कुछ कह नहीं सकता; बेहोश-सा, असहाय-सा, चुपचाप टुकुर-टुकुर तक रहा है। आँखें लाल और शरीर गर्म। सुरेन्द्र, जब वह साँस लेता है तो उसे बड़ा ही कष्ट होता है। (दीर्घ निःश्वास छोड़ता है।) क्या होने को है सुरेन्द्र?

सुरेन्द्र : हौसला करो! अभी डॉक्टर आ जायगा। देखो, दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी है।

(दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की सायँ-सायँ।)

रौशन : नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र : (सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी!

(रौशन बढ़कर खिड़की से देखता है, फिर वापस आ जाता है।)

रौशन : सामने के मकान का दरवाजा खटखटाया जा रहा है।

(बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत पर हिलते हुए फानूस को देख रहा है।)

रौशन : (घूमते हुए जैसे अपने-आप) यह मामूली ज्वर नहीं; गले का कष्ट साधारण नहीं……(सहसा सुरेन्द्र के पास रुककर) मेरा दिल डर रहा है सुरेन्द्र, कहीं अपनी माँ की तरह अरुण भी मुझे धोखा न दे जायगा? (गला भर आता है) तुमने उसे नहीं देखा, साँस लेने में उसे कितना कष्ट हो रहा है।

(हवा की सायँ-सायँ और वर्षा के थपेड़े।)

रौशन : यह वर्षा, यह आँधी, ये मेरे मन में हौल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है। प्रकृति का यह भयानक खेल, मौत की आवाजें……

(बिजली जोर से कड़क उठती है। बादल गरजते हैं और मकानों के किवाड़ खड़खड़ा उठते हैं।)

माँ : (रसोईघर से) रौशी, दरवाजा खोल आओ। देखो, शायद डॉक्टर आया है।

(रौशन सुरेन्द्र की ओर देखता है।)

सुरेन्द्र : मैं जाता हूँ अभी।

(तेजी से जाता है। रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डॉक्टर और भाषी प्रवेश करते हैं। भाषी के हाथ में इंजेक्शन का सामान है।)

डॉक्टर : क्या हाल है बच्चे का?

(बरसाती उतारकर खूँटी पर टाँगता है और रूमाल से मुँह पोंछता है।)

रौशन : आपको भाषी ने बताया होगा डॉक्टर साहब! मेरा तो जैसे हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ, साँस कुछ कष्ट से आने लगी, लेकिन आज तो वह अचेत-सा पड़ा, जैसे अन्तिम साँसों को जाने से रोक रखने की भरसक कोशिश कर रहा है।

डॉक्टर : चलो, देखता हूँ।

(सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाजे के खटखटाने की आवाज आती है। माँ तेजी से प्रवेश करती है।)

माँ : भाषी! भाषी!

(बीमार के कमरे से भाषी आता है।)

माँ : देखो भाषी, बाहर कौन दरवाजा खटखटा रहा है। (आँखों में चमक आ जाती है) मेरा तो ख्याल है वही लोग आये हैं। मैंने रसोईघर की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिये और बरसातियाँ पहने……

भाषी : वह कौन?

माँ : वही, जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे। बड़े भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है। इतनी वर्षा में भी·····

(जोर-जोर से कुण्डी खटखटाने की निरन्तर आवाज! भाषी भागकर जाता है, माँ खिड़की में जा खड़ी होती है। बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है, सुरेन्द्र तेजी से प्रवेश करता है।)

सुरेन्द्र : भाषी कहाँ है?

माँ : बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

(फिर तेजी से वापस चला गया है। माँ एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झाँकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे में टहलती है। भाषी प्रवेश करता है।)

माँ : कौन है?

भाषी : शायद वही हैं। नीचे बैठा आया हूँ, पिता जी के पास, तुम चलो।

माँ : क्यों?

भाषी : उनके साथ एक औरत भी है।

(माँ जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाजा जरा-सा खोलकर देखता है और आवाज देता है·····)

सुरेन्द्र : भाषी!

भाषी : हाँ!

सुरेन्द्र : इधर आओ!

(भाषी कमरे में चला जाता है। कुछ क्षण के लिए मौन छा जाता है। केवल बाहर मेह बरसने और हवा के थपेड़ों से किवाड़ों के खड़खड़ाने का शोर कमरे में आता है। हवा से फानूस सरसराता है। कुछ समय बाद डॉक्टर, सुरेन्द्र, रौशन और भाषी बाहर आते हैं।)

रौशन : अब बताइये डॉक्टर साहब!

डॉक्टर : (अत्यधिक गम्भीरता से) बच्चे की हालत नाजुक है।

रौशन : बहुत नाजुक है?

डॉक्टर : हाँ!

रौशन : कुछ नहीं हो सकता?

डॉक्टर : भगवान् के घर कुछ कमी नहीं, पर आपने बहुत देर कर दी। डिप्थीरिया[1] में फौरन डॉक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन : हमें मालूम नहीं हुआ डॉक्टर साहब। कुछ साँझ को इसे ज्वर हो आया, गले में भी तकलीफ महसूस हुई। मैं डॉक्टर जीवाराम के पास ले गया—वही, जो हमारे बाजार में हैं—उन्होंने गले में आयोडीन-ग्लिसरीन पेण्ट कर दी और फीवर-मिक्सचर बना दिया। दो खुराकें दीं, इसकी हालत तो पहले से भी खराब हो गयी। शाम को यह कुछ अचेत-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नहीं, तब रात को भाषी को भेजा, फिर भी आप न मिले और फिर यह झड़ी लग गयी—ओले, आँधी और झक्कड़! जैसे प्रलय के बन्धन ढीले हो गये हों।

(बाहर हवा की सायँ-सायँ सुनायी देती है। डॉक्टर सिर नीचा किये खड़ा है। रौशन उत्सुक दृष्टि से उनकी ओर ताक रहा है। सुरेन्द्र मेज के एक कोने पर बैठा छत की ओर, जोर-जोर से हिलते फानूस को देख रहा है।)

---

1. डिप्थीरिया—गले का संक्रामक रोग जिसमें साँस बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

डॉक्टर : (सर उठाता है) मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भाषी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान ले आया था और मेरा ख्याल ठीक निकला। भाषी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुस्खा लिख देता हूँ, यहीं बाजार से दवाई बनवा लेना, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद गले में दवाई की दो-चार बूँदें और एक घण्टे में मुझे सूचित करना। यदि एक घण्टे तक यह ठीक रहा तो मैं एक इंजेक्शन और दे जाऊँगा। कोई दूसरा इलाज भी तो नहीं।

रौशन : (आवाज भर आती है) डॉक्टर साहब!

डॉक्टर : घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी देखभाल करो, शायद……

रौशन : मैं अपनी ओर से कोई कसर न उठा रखूँगा डॉक्टर……! सुरेन्द्र, देखो तुम मेरे पास रहना, जाना नहीं। यह घर इस बच्चे के लिए वीराना है। ये लोग इसका जीवन नहीं चाहते, बड़ा रिश्ता पाने के लिए रास्ते में इसे रोड़ा समझते हैं। इसकी मौत चाहते हैं……

सुरेन्द्र : क्या कहते हो रौशन……

डॉक्टर : रौशनलाल……

रौशन : आप नहीं जानते डॉक्टर साहब, ये सब लोग पत्थर-दिल हैं! आपको मालूम नहीं—इधर मैं अपनी पत्नी का दाह-कर्म करके लौटा था, उधर ये दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे।

सुरेन्द्र : यह तो दुनिया की रीत है भाई!

रौशन : दुनिया की रीत—इतनी निष्ठुर, इतनी निर्मम, इतनी क्रूर? नहीं जानती कि जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है, किसी के लाड़-प्यार में पली होती है, फिर……(डॉक्टर को जाते देखकर) आप जा रहे हैं डॉक्टर साहब! (भाषी से) देखो भाषी, जल्दी आना बस, जैसे यहीं खड़े हो।

(डॉक्टर और भाषी चले जाते हैं।)

रौशन : सुरेन्द्र, क्या होने को है? क्या अरुण भी मुझे सरला की तरह दगा दे जायगा! मैं तो उसे देखकर सरला का दुःख भूल चुका था लेकिन अब……अब……(हाथों से चेहरा छिपा लेता है।)

सुरेन्द्र : (सुरेन्द्र उसे धकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो, उसके घर में क्या कमी है? वह चाहे तो मुर्दों में जान आ जाय! मरणासन्न उठ खड़े हों।

रौशन : (भर्राये गले से) मुझे उस पर कोई विश्वास नहीं रहा। उसका कोई भरोसा नहीं—निर्मम और क्रूर! उसका काम सताये हुओं को और सताना है, जले हुओं को और जलाना है।

सुरेन्द्र : दीवाने न बनो, चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो! मैं देखता हूँ, भाषी अभी क्यों नहीं आया।

(उसे दरवाजे के अन्दर धकेलकर मुड़ता है। दायीं ओर के दरवाजे से माँ प्रवेश करती है।)

माँ : किधर चले?

सुरेन्द्र : जरा भाषी को देखने जा रहा था।

माँ : क्या हाल है अरुण का?

सुरेन्द्र : उसकी हालत खराब हो रही है।

माँ : हमने तो बाबा, बोलना ही छोड़ दिया है। ये डॉक्टर जो न करें, थोड़ा है। बहू के मामले में तो यही बात हुई थी। अच्छी-भली हकीम की दवा चल रही थी। आराम हो रहा था। जिगर का बुखार ही तो था, दो-दो बरस भी रहता है, पर यह डॉक्टरों को लाये बिना न माना और उन्होंने दे दिया दवा का फतवा! हमने तो भई इसीलिए कुछ कहना-सुनना ही छोड़ दिया है। आखिर मैंने भी तो पाँच-पाँच बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डॉक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी। क्या बताया डॉक्टर ने?

सुरेन्द्र : डिप्थीरिया।

माँ : क्या!

सुरेन्द्र : बड़ी भयानक बीमारी है माँ जी! अच्छा-भला आदमी चन्द घण्टों के अन्दर खत्म हो जाता है।

माँ : राम-राम! तुम लोगों ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला। उसे जरा ज्वर है, छाती जम गयी होगी, बस, मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, पर मुझे कोई हाथ लगाने दे तब न! हमें तो वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र : नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है! आपसे ज्यादा वह किसे प्यारा होगा!

(चलने को उद्यत होता है।)

माँ : सुनो!

(सुरेन्द्र रुक जाता है)

माँ : मैं तुमसे एक बात करने आयी थी, तुम उसके मित्र हो न, उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र : कहिये।

माँ : आज वे फिर आये हैं।

सुरेन्द्र : वे कौन?

माँ : वे सियालकोट के व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रौशी के लिए अपनी लड़की का शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं, सामने ही न आया। हारकर बेचारे चले गये। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र : माँ जी·····

माँ : तुम जानते हो बच्चा, दुनिया जहान का यह नियम है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। रामप्रताप को ही देख लो, अभी दाह-कर्म-संस्कार के बाद नहाकर साफा भी न निचोड़ा था कि नकोदरवालों ने शगुन दे दिया, एक महीने के बाद ब्याह हो गया और अब तो सुनते हैं, बच्चा भी होनेवाला है।

सुरेन्द्र : माँ जी, रामप्रताप और रौशन में कुछ फर्क है।

माँ : यही न, कि वह माँ-बाप का आज्ञाकारी है और यह पढ़-लिखकर बात मेटना सीख गया है। बेटा, अभी तो चार नाते आते हैं फिर देर हो गयी तो इधर कोई मुँह भी न करेगा। लोग सौ-सौ बातें बनायेंगे, सौ-सौ लांछन लगायेंगे। और फिर कौन ऐसा क्वाँरा है·····

सुरेन्द्र : माँ जी, तुम्हारा रौशन बिन ब्याहा न रहेगा, इसका मैं विश्वास दिलाता हूँ·····

माँ : यह ठीक है बेटा, पर अब ये भले आदमी मिलते हैं, घर अच्छा है, लड़की अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, पढ़ी-लिखी है। और सबसे बढ़कर यह है कि ये लोग बड़े अच्छे हैं। लड़की की बड़ी बहन से अभी मैंने बातें की हैं। ऐसी सलीकेवाली है कि क्या कहूँ, बोलती है तो फूल झड़ते हैं। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है, वह आप कैसे न अच्छी होगी!

सुरेन्द्र : माँ जी, अरुण की हालत ठीक नहीं है। जाकर देखो तो मालूम हो।

माँ : बेटा, अब ये भी इतनी दूर से आये हैं—इस आँधी और तूफान में। कैसे इन्हें निराश लौटा दें?

सुरेन्द्र : तो आखिर आप मुझसे क्या चाहती हैं?

माँ : तुम्हारा वह मित्र है, उससे जाकर कहो कि जरा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। जो कुछ वे पूछते हों, उन्हें बता दे, इतने में मैं लड़के के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र : मुझसे यह नहीं हो सकता माँ जी! बच्चे की हालत ठीक नहीं, बल्कि चिन्ताजनक है। आप नहीं जानतीं,

वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान उसी में केन्द्रित हो गया है। और इस समय, जब बच्चे की हालत खराब है, मैं उससे यह कैसे कहूँ?

(बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। रौशन प्रवेश करता है—बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आँखें फटी-फटी-सी!)

रौशन : सुरेन्द्र, तुम अभी यहीं खड़े हो! भगवान् के लिए जाओ जल्दी, जाओ! मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छाता ले जाओ। देखो, भाषी अभी आया क्यों नहीं! अरुण तो……

भाषी : (सीढ़ियों से) मैं आ गया भाई साहब!

(भाषी दवाई की शीशी लिये हुए आता है। सुरेन्द्र और भाषी बीमार के कमरे में आते हैं। माँ रौशन के समीप आती है।)

माँ : क्या बात है, घबराये हुए क्यों हो?

रौशन : माँ, उसे डिप्थीरिया हो गया है!

माँ : मुझे सुरेन्द्र ने बताया। (असन्तोष से सिर हिलाकर) तुम लोगों ने मिल-मिलाकर……

रौशन : क्या कह रही हो? तुम्हें खुद अगर किसी बात का पता नहीं तो दूसरों को तो कुछ करने दो।

माँ : चलो, मैं चलकर देखती हूँ। (बढ़ती है।)

रौशन : (रास्ता रोकता है) नहीं, तुम मत जाओ। उसे बेहद तकलीफ है, साँस उसे मुश्किल से आती है, उसका दम उखड़ रहा है, तुम कोई घुट्टी-बुट्टी की बात करोगी। (जाना चाहता है।)

माँ : सुनो।

(रौशन मुड़ता है। माँ असमंजस में है।)

रौशन : कहो!

माँ : (चुप)

रौशन : जल्दी कहो, मुझे जाना है।

माँ : वे फिर आये हैं।

रौशन : वे कौन?

माँ : वही सियालकोटवाले!

रौशन : (क्रोध से) उनसे कहो—जहाँ से आये हैं, वहीं चले जायँ। (जाना चाहता है।)

माँ : रौशी!

रौशन : मैं नहीं जानता, मैं पागल हूँ या आप! क्या आप लोग मेरी सूरत नहीं देखते? क्या आपको इस पर कुछ लिखा दिखायी नहीं देता? शादी, शादी, शादी! क्या शादी ही दुनिया में सब-कुछ है? घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी की सूझ रही है। आखिर आप लोगों को हो क्या गया है? क्या वह मेरी पत्नी न थी, क्या वह……

माँ : शोर मत मचाओ! हम तुम्हारे ही लाभ की बात कर रहे हैं, रामप्रताप……

रौशन : (चीखकर) तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो! अपढ़, अशिक्षित, गँवार! उसके दिल कहाँ है? महसूस करने का माद्दा कहाँ है? वह जानवर है।

माँ : तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था……

रौशन : वे……माँ, जाओ, मैं क्या कहने लगा था।

(तेजी से मुड़कर कमरे में चला जाता है, दरवाजा खट से बन्द कर लेता है। हाथ में हुक्का लिये हुए खँखारते-खँखारते रौशन के पिता प्रवेश करते हैं।)

पिता : क्या कहता है रौशन?

माँ : वह तो बात भी नहीं सुनता, जाने बच्चे की तबीयत बहुत खराब है।

पिता : (खँखारकर) एक दिन में ही इतनी क्या खराब हो गयी? मैं जानता हूँ, यह सब बहानेबाजी है। (जोर से आवाज देते हैं) रौशी!

(खिड़कियों पर वायु के थपेड़ों की आवाज!)

पिता : (फिर आवाज देते हैं) रौशी!

(रौशन दरवाजा खोलकर झाँकता है। चेहरा पहले से भी उतरा हुआ है। आँखें रुआँसी और निगाहों में करुणा।)

रौशन : (अत्यन्त थके स्वर से) धीरे बोलें आप, क्या शोर मचा रहे हैं!

पिता : इधर आओ!

रौशन : मेरे पास समय नहीं है!

पिता : (चीखकर) समय नहीं?

रौशन : धीरे बोलें आप!

पिता : मैं कहता हूँ, इतनी दूर से आये हैं, तुम्हें देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे जरा एक-दो मिनट बात कर लो।

रौशन : मैं नहीं जा सकता!

पिता : नहीं जा सकते?

रौशन : नहीं जा सकता!

पिता : तो मैं शगुन ले रहा हूँ! इस वर्षा, आँधी और तूफान में, उन्हें अपने घर से निराश नहीं लौटा सकता। घर आयी लक्ष्मी का निरादर नहीं कर सकता।

रौशन : (रोने की तरह हँसता है।) हाँ, आप लक्ष्मी का स्वागत कीजिए। (खट से दरवाजा बन्द कर लेता है।)

पिता : (रौशन की माँ से) इस एक महीने में हमने कितनों को इनकार नहीं किया, लेकिन इनको कैसे ना कर दें? सियालकोट में इनकी बड़ी भारी फर्म है। मैंने महीने भर में अच्छी तरह पता लगा लिया है। हजारों का तो इनके यहाँ लेन-देन है।

माँ : बहू की बीमारी का पूछते होंगे?

पिता : उन्हें सन्देह था, पर मैंने कह दिया, जिगर का बुखार था, बिगड़ गया।

माँ : बच्चे को पूछते होंगे।

पिता : हाँ, पूछते थे। मैंने कह दिया कि बच्चा है, पर माँ की मृत्यु के बाद उसकी हालत ठीक नहीं रहती, परमात्मा ही मालिक है।

माँ : तो आप हाँ कर दें।

पिता : हाँ, मैं तो शगुन ले लूँगा।

(चले जाते हैं। हुक्के की आवाज दूर होते-होते गुम हो जाती है। माँ खुशी-खुशी कमरे में घूमती है। भाषी आता है और तेजी से निकल जाता है।)

माँ : भाषी!

पिता : मैं डॉक्टर के यहाँ जा रहा हूँ।

(तेजी से चला जाता है। बीमार के कमरे से सुरेन्द्र निकलता है।)

सुरेन्द्र : (भरी हुई आवाज में) माँ जी……

माँ : (घबराये स्वर में) क्या बात है? क्या बात है?

सुरेन्द्र : दाने लाओ और दीये का प्रबन्ध करो।
माँ : क्या?
(आँखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है—हवा की सायँ-सायँ।)
सुरेन्द्र : अरुण इस संसार से जा रहा है।
(फानूस टूटकर धरती पर गिर पड़ता है। माँ भागकर दरवाजे पर जाती है।)
माँ : रौशी, रौशी।
(दरवाजा अन्दर से बन्द है।)
माँ : रौशी, रौशी!
रौशन : (कमरे के अन्दर से भर्राये हुए स्वर में) क्या बात है?
माँ : दरवाजा खोलो!
रौशन : तुम लक्ष्मी का स्वागत कर आओ!
माँ : रौशी·····
रौशन : (चुप)
माँ : रौशी!
(सीढ़ियों से रौशन के पिता के हुक्का पीने और खँखारने की आवाज आती है।)
पिता : (सीढ़ियों से ही) रौशन की माँ, बधाई हो!
(पिता का प्रवेश! माँ उनकी ओर मुड़ती है।)
पिता : बधाई हो, मैंने शगुन ले लिया।
(कमरे का दरवाजा खुलता है, मृत बालक का शव लिये रौशन आता है।)
रौशन : हाँ, नाचो, गाओ, खुशियाँ मनाओ!
पिता : हैं। मर गया!! हाथ से हुक्का गिर पड़ता है और मुँह खुला रह जाता है।)
माँ : मेरा लाल! (चीख मारकर सिर थामे धम से बैठ जाती है।)
सुरेन्द्र : माँ जी, जाकर दाने लाओ और दीये का प्रबन्ध करो।

(पर्दा)

अभ्यास प्रश्न

● समीक्षात्मक प्रश्न

1. 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी की कथावस्तु या कथानक लिखिए।

अथवा

'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी का सारांश (कथा-सार) अपने शब्दों में लिखिए।

2. 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी के प्रमुख पात्र का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

"रौशन एक भावुक पिता और स्नेही पति है।" इस कथन के आधार पर रौशन का चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

रौशन के चरित्र की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

3. 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी की एकमात्र महिला पात्र रौशन की माँ का चरित्र-चित्रण कीजिए।

4. 'लक्ष्मी का स्वागत' एक भावनाप्रधान मर्मस्पर्शी एकांकी है। इस पर अपने विचार व्यक्त कीजिए।

5. अभिनेयता की दृष्टि से 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी की समीक्षा कीजिए।
6. पठित एकांकी के प्रकाश में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' के एकांकी नाटकों की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
7. सुरेन्द्र तथा भाषी की चारित्रिक विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
8. 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी की विशेषताएँ कथा-संगठन के विकास को दृष्टिगत रखते हुए लिखिए।
9. एकांकी के तत्त्वों के आधार पर 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी की समीक्षा कीजिए।
10. 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी में किस पात्र का चरित्र आपकी दृष्टि से अधिक अच्छा है? उसके चारित्रिक गुणों को अपने शब्दों में लिखिए।
11. उपेन्द्रनाथ 'अश्क' का जीवन-परिचय देते हुए उनकी प्रमुख कृतियों का उल्लेख कीजिए।

● लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी के शीर्षक की उपयुक्तता पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
2. 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी का उद्देश्य क्या है? एकांकीकार को इसकी पूर्ति में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है? अपने शब्दों में लिखिए।
3. क्या आप रौशन के विचारों से सहमत हैं? यदि नहीं तो क्यों? तर्क सहित उत्तर लिखिए।
4. भाषी के चरित्र की मुख्य विशेषताएँ लिखिए।
5. यदि आप रौशन होते तो उसकी जगह क्या करते? तर्कसंगत उत्तर दीजिए।
6. 'लक्ष्मी का स्वागत' एकांकी के आधार पर रौशन के पिता से सम्बन्धित दस वाक्य लिखिए।

● वस्तुनिष्ठ प्रश्न

सही उत्तर के सम्मुख सही (✓) का चिह्न लगाइये—

1. **रौशन के पुत्र को कौन-सा रोग था—**
   (अ) पीलिया ( )
   (ब) डिप्थीरिया ( )
   (स) मलेरिया ( )
2. **रौशन के माता-पिता उसकी दूसरी शादी इसलिए करना चाहते थे, क्योंकि—**
   (अ) अरुण की परवरिश ठीक से हो सके। ( )
   (ब) उन्हें दहेज का लालच था। ( )
   (स) उनके कुल की यह रीति थी। ( )
3. **रौशन के पुनर्विवाह का शगुन लिया था—**
   (अ) माँ ने ( )
   (ब) पिता ने ( )
   (स) स्वयं रौशन ने ( )
4. **रौशन की माँ के आग्रह करने पर भी सुरेन्द्र रौशन से उसके पुनर्विवाह की बात नहीं करता; क्योंकि—**
   (अ) वह अरुण की बीमारी से रौशन का दुःख समझता था। ( )
   (ब) वह अपना विवाह करना चाहता था। ( )
   (स) वह रौशन का पुनर्विवाह नहीं चाहता था। ( )

● आन्तरिक मूल्यांकन

1. "दहेज एक अभिशाप है" इस शीर्षक के आधार पर उसके पक्ष एवं विपक्ष में तर्क दीजिए।
2. दहेज रोकने के लिए आप क्या-क्या करेंगे? तालिका द्वारा दर्शाइए।

❖

5 विष्णु प्रभाकर

लेखक-एक संक्षिप्त परिचय

- **जन्म**—21 जून, 1912 ई0।
- **जन्म-स्थान**—मुजफ्फरपुर (उ0प्र0)।
- प्रभाकर की परीक्षा पास करने पर नाम के आगे 'प्रभाकर' शब्द जुड़ा।
- **प्रथम एकांकी**—'हत्या के बाद'।
- आर्यसमाज और महात्मा गाँधी के जीवन-दर्शन का गहरा प्रभाव।
- **मृत्यु**—11 अप्रैल, 2009 ई0।

जीवन-परिचय—विष्णु प्रभाकर का जन्म 21 जून, 1912 ई0 को उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरपुर जिले में स्थित मीरापुर नामक ग्राम में हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। कुछ पारिवारिक कारणों से उनको शिक्षा के लिए, हिसार (हरियाणा) जाना पड़ा। वहीं पर हाईस्कूल की शिक्षा प्राप्त की। पंजाब विश्वविद्यालय से बी0 ए0 और फिर हिन्दी 'प्रभाकर' की परीक्षा उत्तीर्ण की। इसीलिए उनके नाम के आगे 'प्रभाकर' शब्द लगाया जाने लगा।

शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् वे हिसार में ही सरकारी सेवा में आ गये। सरकारी नौकरी के समय भी वे साहित्य के अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे। सन् 1931 ई0 में उनकी पहली कहानी प्रकाशित हुई। सन् 1933 ई0 में वे हिसार नगर की शौकिया नाटक कम्पनियों के सम्पर्क में आये और उनमें से एक कम्पनी में अभिनेता से लेकर मन्त्री तक का कार्य किया। सन् 1938 ई0 में 'हंस' का एकांकी विशेषांक प्रकाशित हुआ। उसे पढ़ने के उपरान्त और कुछ मित्रों की प्रेरणा से उन्होंने सन् 1939 ई0 में प्रथम एकांकी लिखा, जिसका शीर्षक था—'हत्या के बाद'। आप आकाशवाणी दिल्ली केन्द्र पर ड्रामा प्रोड्यूसर तथा 'बाल भारती' के सम्पादक भी रह चुके हैं। आपके जीवन पर आर्यसमाज और महात्मा गाँधी के जीवन-दर्शन का गहरा प्रभाव रहा है। इनका निधन 11 अप्रैल, 2009 ई0 को हुआ।

कृतियाँ—विष्णु प्रभाकर ने अनेक विधाओं पर अपनी कलम चलायी। आपके द्वारा लिखे गये एकांकी, नाटक, कहानी, उपन्यास, जीवनियाँ, रेडियो-रूपक और रिपोर्ताज हिन्दी साहित्य की महत्त्वपूर्ण निधि हैं। एकांकी के क्षेत्र में आपका विशिष्ट योगदान रहा है। एक ख्यातिप्राप्त एकांकीकार के रूप में 'प्रभाकर' जी ने सामाजिक, राजनीतिक एवं ऐतिहासिक विषय-वस्तु पर आधारित कई प्रभावपूर्ण एकांकियों की रचना की। आपने सामाजिक एकांकियों के आधार पर वर्तमान समाज की यथार्थ स्थिति एवं अनेक ज्वलन्त समस्याओं को उभारा है।

शरत् चन्द्र की जीवनी पर आधारित 'आवारा मसीहा' आपके द्वारा लिखी गयी बहुचर्चित एवं अत्यन्त प्रभावपूर्ण रचना है। प्रभाकर जी की प्रमुख नाट्य रचनाएँ हैं—'नव प्रभात' (नाटक), 'डॉक्टर', 'प्रकाश और परछाइयाँ', 'बारह एकांकी', 'अशोक', 'इन्सान और अन्य एकांकी', 'दस बजे रात', 'ये रेखाएँ', 'ये दायरे', 'ऊँचा पर्वत, गहरा सागर', 'मेरे श्रेष्ठ रंग एकांकी', 'तीसरा आदमी', 'नये एकांकी' तथा 'डरे हुए' (एकांकी-संग्रह)।

अन्य प्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'ढलती रात', 'स्वप्नमयी', 'संघर्ष के बाद', 'जाने-अनजाने' आदि।

साहित्यिक अवदान— विष्णु प्रभाकर की रचनाओं में प्रारम्भ से ही स्वदेश-प्रेम, राष्ट्रीय चेतना और समाज-सुधार का स्वर मुखर रहा है। इसके कारण उन्हें ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन बनना पड़ा। अतः उन्होंने सरकारी नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और स्वतन्त्र लेखन को अपनी जीविका का साधन बना लिया।

विष्णु प्रभाकर ने एकांकी और रेडियो-रूपक के अतिरिक्त कहानी, उपन्यास, रिपोर्ताज आदि विधाओं में भी पर्याप्त मात्रा में लिखा है। इनके एकांकियों में पात्रों का चरित्र-चित्रण मनोवैज्ञानिक आधार पर किया गया है। एकांकियों की कथावस्तु घटनापरक, गतिशील व प्राणवान् है। वाक्य-विन्यास अत्यन्त सरल एवं बोधगम्य है। संवाद छोटे, प्रभावपूर्ण एवं प्रसंगानुकूल हैं। आपने अधिकांश एकांकियों की रचना रेडियो-रूपक के रूप में की है। ♦

सीमा-रेखा

पात्र-परिचय

लक्ष्मीचन्द्र
शरतचन्द्र
सुभाषचन्द्र
कैप्टन विजय
तारा, अन्नपूर्णा, सविता, उमा

(दूसरे भाई, उपमन्त्री शरतचन्द्र का ड्राइंगरूम। आयु 52 वर्ष। आधुनिक पर सादगी की छाप। दीवार पर गाँधी जी का तैल-चित्र है। दो-चार चित्र तिपाइयों पर भी हैं। पुस्तकें काफी हैं। बीचोबीच एक सोफा-सेट है। उधर की ओर सामने दो द्वार हैं, जो बाहर बरामदे में खुलते हैं। उसके पार सड़क है। पूर्व और पश्चिम के द्वार घर के अन्दर जाते हैं। सोफे व मेजों के आस-पास कुर्सियाँ हैं। पर्दा उठने पर मंच खाली है। दो क्षण बाद शरतचन्द्र तेजी से आते हैं। बेहद परेशान हैं, कई क्षण बेचैनी में घूमते हैं। फिर टेलीफोन उठा लेते हैं। नम्बर मिलाते हैं।)

शरत : हलो, मैं शरत बोल रहा हूँ। विजय का कुछ पता लगा?……क्या……क्या अभी तक नहीं लौटा? झगड़ा बढ़ गया है। क्या? गोली……गोली चलानी पड़ी। भीड़ बैंक के पास बेकाबू हो गयी थी। बैंक को लूटा? नहीं……कहीं और लूटमार हुई? नहीं……कोई घायल? अभी कुछ पता नहीं। ओह, देखो, अभी पता करके बताओ। विजय आये तो मुझे टेलीफोन करने को कहो……तुरन्त……समझे, मैं घर पर ही हूँ।
(दूसरा नम्बर मिलाना चाहते हैं कि उनकी पत्नी अन्नपूर्णा घबरायी हुई बाहर से आती है।)

अन्नपूर्णा : आपने कुछ सुना है?

शरत : हाँ, सुना है गोली चल गयी।

अन्नपूर्णा : अपने राज में भी गोली चलती है?

शरत : अपना राज समझता कौन है? जब तक अपना राज नहीं समझेंगे, तब तक गोली चलेगी ही। लेकिन, तुम कहाँ गयी थी?

अन्नपूर्णा : जीजी के पास! रास्ते में सुना रामगंज में गोली चल गयी। बाजार बन्द हो रहे हैं, भय छाया हुआ है, लोग सरकार को गालियाँ दे रहे हैं।

शरत : (चोंगा रखकर आगे आ जाते हैं।) सरकार को गाली ही दी जाती है। गोली चली तो गाली देते हैं, बैंक लुट जाता तब भी गाली ही देते।

अन्नपूर्णा : बैंक! कौन-सा बैंक लुट रहा था, बैंक से तो कुछ झगड़ा नहीं था, कल आपके पीछे कुछ विद्यार्थी बसवालों से झगड़ पड़े थे और आप जानते हैं कि विद्यार्थी……

शरत : (एकदम) कि विद्यार्थी कानून की चिन्ता नहीं करते। बच्चे हैं, अल्हड़ हैं……(तेज होकर) यह भी कोई बात है? लोग पागल हो जाते हैं। कानून अपने हाथ में ले लेते हैं। गोली चली है तो जरूर कोई कारण रहा होगा। कुछ लोगों ने बैंक पर धावा बोला होगा। पुलिस पर पत्थर फेंके होंगे।
(सविता का प्रवेश–चौथा भाई, जन-नेता सुभाषचन्द्र की पत्नी, आयु पैंतीस वर्ष)

सविता : फेंके होंगे तो इसका यह अर्थ नहीं कि पत्थर के जवाब में गोली चला दी जाय। गोली उन्हें आत्मरक्षा के लिए नहीं दी जाती, जनता की रक्षा के लिए दी जाती है।

अन्नपूर्णा : सविता, तुम कहाँ से आ रही हो?

(लक्ष्मीचन्द्र का प्रवेश, व्यापारी, सबसे बड़े भाई, आयु 56 वर्ष)

शरत : तुम क्या कह रही हो?

सविता : मैं ठीक कह रही हूँ……

लक्ष्मी : तुम बिल्कुल गलत कह रही हो। पुलिस गोली न चलाती तो बैंक लुट जाता, बाजार लुट जाता, चारों ओर लूटमार मच जाती। शासन की जड़ें हिल जातीं।

सविता : शासन की जड़ें हिलतीं या न हिलतीं, दादा जी, पर आपकी जड़ें जरूर हिल जातीं। आपका व्यापार ठप्प हो जाता। आपका नुकसान होता……

लक्ष्मी : हाँ, मेरा नुकसान होता। मैं सरकार की प्रजा हूँ। प्रजा की रक्षा करना सरकार का फर्ज है……

सविता : यानी सरकार की पुलिस आपकी रक्षा के लिए है।

लक्ष्मी : हाँ, मेरी रक्षा करने के लिए है।

सविता : केवल आपकी……?

अन्नपूर्णा : न, न, सविता। इनका मतलब केवल अपने से नहीं है। भीड़ इनका ही नुकसान करके न रह जाती। वह सारे शहर को बर्बाद कर देती।

सविता : भीड़ में इतनी शक्ति है जीजी!

शरत : भीड़ में कितनी शक्ति है, सवाल यह नहीं है।

सविता : तो क्या है?

शरत : सवाल यह है कि क्या भीड़ को कानून अपने हाथ में लेने का अधिकार है? मैं समझता हूँ, उसे यह अधिकार नहीं है।

सविता : और यदि वह लेते हैं तो……

शरत : तो वह विद्रोह है और विद्रोह को दबाने का सरकार को पूरा-पूरा अधिकार है।

सविता : लेकिन विद्रोह क्यों किया गया है, यह देखना क्या सरकार का कर्त्तव्य नहीं है?

(टेलीफोन की घण्टी बजती है। शरत एकदम चोंगा उठाते हैं। सब उनके पास आते हैं।)

शरत : हलो……हाँ, मैं ही हूँ……क्या स्थिति अभी काबू में नहीं है? लूटमार तो नहीं हुई है न? अच्छा……घायल कितने हुए? ……पाँच वहीं मर गये। बीस घायल अस्पताल में हैं……मैं अभी आता हूँ। अभी……

(टेलीफोन का चोंगा रखकर तेजी से जाने को मुड़ते हैं।)

अन्नपूर्णा : (एकदम) नहीं, नहीं आप ऐसे नहीं जा सकते।

लक्ष्मी : हाँ, पहले फोन करके पुलिस बुला लो।

सविता : पुलिस क्या करेगी? चलिये, मैं चलती हूँ।

शरत : आप चिन्ता न करें। पुलिस की गाड़ी बाहर खड़ी है।

सविता : (व्यंग्य से) जरूर होगी। जनता के नेता अब पुलिस की गाड़ी में ही जा सकते हैं। (आवेश में) जिन्होंने जनता का नेतृत्व किया, जनता के आगे होकर गोलियाँ खायीं, जो एक दिन जनता की आँखों के तारे थे वे ही आज पुलिस के पहरे में जनता से मिलने जाते हैं।

(शरत तिलमिलाकर कुछ कहना चाहते हैं कि तभी तीसरे भाई विजय, पुलिस कप्तान, आयु 48 वर्ष, पूरी वर्दी में प्रवेश करते हैं।)

लक्ष्मी : (एकदम) विजय!

सविता : कप्तान साहब, आप यहाँ!

अन्नपूर्णा : विजय, अब क्या हाल है?

शरत : विजय, तुमने यह क्या कर डाला? तुमने गोली क्यों चलायी? तुम्हें सोचना चाहिए था कि……

लक्ष्मी : विजय ने जो कुछ किया सोच-समझकर किया है और ठीक किया है।

अन्नपूर्णा : हाँ, बिना सोचे-समझे कोई काम कैसे किया जा सकता है, सोचा तो होगा ही पर……

शरत : नहीं, नहीं, यह बहुत बुरा हुआ। जानते नहीं, अब जनता का राज है और जनता के राज में, जनतन्त्र में जनता की प्रतिष्ठा होती है।

विजय : लेकिन गुण्डों की नहीं।

सविता : वे गुण्डे हैं!

लक्ष्मी : हाँ, वे गुण्डे हैं। दंगा करनेवाले गुण्डे होते हैं, शोहदे होते हैं।

शरत : नहीं, भैया! वे सब गुण्डे नहीं होते। हाँ, गुण्डों के बहकावे में जरूर आ जाते हैं।

सविता : यह भी खूब रही। जनता कुछ गुण्डों के बहकावे में आ जाय और आप लोगों की, जो कल तक उनके सब-कुछ थे, कोई बात न सुनें।

शरत : (तिलमिलाकर) सविता……सविता……

सविता : सुनिए, भाई साहब! बात यह है कि आप अपना सन्तुलन खो बैठे हैं। आप निरंकुश होते जा रहे हैं। आप अपने को केवल शासक मानने लगे हैं। आप भूल गये हैं कि जनता राज में शासक कोई नहीं होता। सब सेवक होते हैं।

विजय : (थका-सा) सेवक होते हैं तो क्या सेवक मर जाने के लिए हैं?

सविता : हाँ, मर जाने के लिए ही हैं। कोई मरकर देखे तो……

लक्ष्मी : सविता, बहू! तुम बहुत ही आगे बढ़ रही हो। स्वतन्त्रता का युग है तो इसका यह मतलब नहीं कि बड़े-छोटे का विचार न किया जाय।

अन्नपूर्णा : हाँ, सविता! तुम्हें इतना तेज नहीं होना चाहिए।

सविता : मैं क्षमा चाहती हूँ। आप सब मुझसे बड़े हैं। आपका अपमान मैं कभी नहीं कर सकती, ऐसा सोच भी नहीं सकती। पर इस नाते-रिश्ते से ऊपर भी तो हम कुछ हैं। हम स्वतन्त्र भारत की प्रजा हैं, हम एक स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं। हम इन्सान हैं।

विजय : इन्सान हैं तो सभी हैं। स्वतन्त्र देश के नागरिक हैं तो सभी हैं। कानून सब पर लागू होता है।

लक्ष्मी : बेशक सब पर लागू होता है। सब इन्सान हैं।

सविता : बेशक सब समान हैं। दादा जी, पर जिन पर व्यवस्था और न्याय की जिम्मेदारी है, उनका दायित्व अधिक है।

शरत : जरूर है, इसीलिए मुझे जाना है। लेकिन जाने से पहले मैं जानना चाहूँगा विजय कि आखिर बात कैसे बढ़ गयी?

विजय : मैं तो वहाँ था नहीं। कल के झगड़े के बारे में आप जानते ही हैं। आज फिर विद्यार्थियों ने प्रदर्शन किया। डिपो पर हमला किया। वहाँ से वे बैंक के पास आये……

शरत : क्या उन्होंने बैंक पर हमला किया?

विजय : कर सकते थे। शायद वे यही चाहते थे।

शरत : कौन विद्यार्थी·····

विजय : यह तो नहीं कह सकता। भीड़ में केवल विद्यार्थी ही नहीं थे। शरारती लोग ऐसे अवसरों की ताक में रहते हैं। पुलिस ने भीड़ को रोका तो इन्होंने पत्थर फेंके·····

अन्नपूर्णा : पुलिस पर पत्थर फेंके?

लक्ष्मी : तब तो जरूर उनका इरादा बैंक लूटने का था।

शरत : क्या पुलिसवालों को चोटें आयीं?

विजय : जी हाँ, दस-बारह सिपाही घायल हो गये। एक इन्स्पेक्टर का सिर फूट गया।

सविता : बस?

लक्ष्मी : तुम चाहती थी कि वे सब मर जाते।

(चौथे भाई सुभाषचन्द्र का प्रवेश–जन-नेता, आयु 44 वर्ष)

सुभाष : हाँ, वे सब मर जाते तो ठीक होता।

शरत : सुभाष?

अन्नपूर्णा : सुभाष, यह तुम क्या कह रहे हो?

लक्ष्मी : तुम तो कम्युनिस्ट हो गये हो और अपनी बहू को भी तुमने ऐसा ही बना दिया (बाहर शोर उठता है)।

सुभाष : दादा जी! मैं न कभी कम्युनिस्ट था, न हूँ और न कभी बनूँगा, पर मैं स्वतन्त्र भारत में गोली चलाना जुर्म मानता हूँ।

लक्ष्मी : चाहे जनता कुछ भी करे। उसे सब अधिकार है।

सुभाष : बेशक है। उसी ने इन लोगों के (शरत की ओर इशारा करता है) हाथ में शासन की बागडोर सौंपी है।

शरत : किसलिए सौंपी है? रक्षा के लिए या बर्बादी के लिए?

(बाहर शोर तेज होता है। सविता चौंकती है। धीरे-से बोलती है और बाहर जाती है। शेष लोग तेज-तेज बोलते रहते हैं।)

सविता : (अलग से) यह शोर कैसा है देखूँ तो·····(खिसक जाती है।)

सुभाष : (शरत की बात का उत्तर देते हुए) रक्षा के लिए।

शरत : लेकिन जब जनता स्वयं नाश करने पर तुल जाय तो क्या हमें उसे ऐसा करने देना चाहिए।

सुभाष : नहीं।

विजय : (एकदम) यही तो हमने किया है।

लक्ष्मी : और ठीक किया है।

शरत : और ऐसा करने का उन्हें अधिकार है। वे हैं ही इसीलिए। तुम भी इसे मानते हो तो फिर कहना क्या चाहते हो?

सुभाष : यही कि हमें राज्य की रक्षा करते-करते प्राण दे देने चाहिए, प्राण लेने नहीं चाहिए। हमें देने का ही अधिकार है, लेने का नहीं?

शरत : सुभाष! यह कोरा आदर्शवाद है।

सुभाष : कर्त्तव्य का पालन करते हुए मरना यदि आदर्शवाद है तो मैं कहूँगा कि विश्व के प्रत्येक नागरिक को ऐसा ही आदर्शवादी होना चाहिए।

शरत : सुभाष, तुम केवल बोलना जानते हो।

सुभाष : आपसे ही सीखा है, भाई साहब।

विजय : लेकिन जिम्मेदारी सँभालना नहीं सीखा।

सुभाष : वह भी सीखा है। मैं जनता से प्रतिज्ञा करके आया हूँ, आज शाम तक गोली चलानेवाले कप्तान-पुलिस को मुअत्तिल करागे छोड़ूँगा।

अन्नपूर्णा : क्या·····क्या कहा तुमने?

लक्ष्मी : अपने ही घर में तुम अपनों के दुश्मन बनकर आये हो।

सुभाष : अपना-पराया मैं कुछ नहीं जानता। मैं जनता का प्रतिनिधि हूँ। मैं माननीय उपमन्त्री श्री शरतचन्द्र को बताने आया हूँ कि उनके एक अधिकारी ने निहत्थी जनता पर गोली चलाकर जो बर्बर काम किया है, उसकी जाँच करवानी होगी, और जब तक वह जाँच पूरी नहीं होती, तब तक गोली चलाने से सम्बन्धित सब व्यक्तियों को मुअत्तिल करना होगा।

शरत : यह किसकी माँग है?

सुभाष : उस जनता की, जिसने आपको गद्दी सौंपी है, जिससे आज आप दूर भागते हैं, डरते हैं।

शरत : मैं डरता हूँ?

सुभाष : हाँ, आप डरते हैं, यदि न डरते तो घर में छिपकर बैठे रहने के बजाय जनता के पास जाते। तब यह नौबत न आती, गोली न चलती, निर्दोष-निहत्थे नागरिक न मरते।

शरत : लेकिन तुम भी तो जनता के नेता हो, तुमने कौन-सा तीर मार लिया?

सुभाष : मैंने क्या किया है, यह मेरे मुँह से सुनकर क्या करेंगे, पर इतना कह देता हूँ कि जनता संयत न रहती तो कप्तान विजयचन्द्र यहाँ बैठे दिखायी न देते। इनसे पूछिए तो क्या इन्हें बन्दूकें इसलिए दी गयी हैं कि जरा-सा पत्थर आ लगे तो जनता को गोली से भून दें·····

लक्ष्मी : गोली न चलती तो·····

सुभाष : (एकदम) दादा जी, आप न बोलें। आप व्यापारी हैं। आपका सिद्धान्त आपका स्वार्थ है·····

लक्ष्मी : (एकदम आवेश में) मैं तो स्वार्थी हूँ, पर तुम अपनी कहो। तुम्हारी नेतागीरी भी तो मुझ स्वार्थी के पैसे से ही चलती है।

सुभाष : ठीक है, उतना पैसा सार्थक होता है·····पर आप यह क्यों भूल गये कि उस दिन जब कुछ व्यापारी पकड़े गये थे, तो आपने विजय भैया को कितना कोसा था।

लक्ष्मी : और आज तुम कोस रहे हो। क्योंकि तुम मन्त्री नहीं हो, विरोधी दल के हो।

सुभाष : हाँ, मैं विरोधी दल का हूँ, लेकिन दादा जी! मैं आपसे बातें नहीं कर रहा।

लक्ष्मी : (क्रोध में) तो मैं ही कब तुमसे बातें कर रहा हूँ, वाह! (तेजी से अन्दर जाते हैं।)

अन्नपूर्णा : दादा जी, दादा जी·····(पीछे-पीछे जाती है, विजय भी जाते हैं।)

सुभाष : मैं माननीय उपमन्त्री महोदय से पूछता हूँ कि·····

शरत : (एकदम) और मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या जनता के राज में भी सड़कों पर प्रदर्शन होने चाहिए, भीड़ को कानून हाथ में लेना चाहिए?

सुभाष : जब तक सरकार और उसके अधिकारी ठीक आचरण नहीं करेंगे तब तक जनता प्रदर्शन करती ही रहेगी, कानून हाथ में लेती रहेगी। भाई साहब, इस नौकरशाही ने शासन की इस भूख ने आपको जनता से दूर कर दिया है।

शरत : सुभाष, तुम बार-बार एक ही बात की रट लगाये जा रहे हो।

सुभाष : मैं ठीक कह रहा हूँ। जनता सरकार के ढाँचे को उतना महत्त्व नहीं देती, जितना अधिकारियों की ईमानदारी और हमदर्दी को। आप चलिये मेरे साथ·····(सहसा शोर बढ़ता है।)

शरत : (एकदम) हाँ, चलूँगा, मुझे तो कभी का चले जाना था, पर·····यह शोर कैसा?

सुभाष : अवश्य कोई बात है। देखूँ·····(सुभाष जाने को मुड़ता है, तभी लक्ष्मीचन्द्र की पत्नी तारादेवी विक्षिप्त-सी वहाँ आती है।)

तारा : (पागल-सी) विजय कहाँ है? (चारों तरफ देखती है।)

सुभाष : भाभी जी, क्या बात है?

तारा : मैं पूछती हूँ, विजय कहाँ है। उसका मनचाहा हो गया। उसकी गोली अरविन्द के सीने से पार हो गयी·····

शरत : (एकदम) भाभी!

सुभाष : भाभी, तुम क्या कह रही हो?

(सविता का प्रवेश)

सविता : भाभी ठीक कह रही हैं। अरविन्द जनता की सरकार की गोली का शिकार हो गया।

(लक्ष्मीचन्द्र, विजय, अन्नपूर्णा का प्रवेश)

लक्ष्मी : कौन गोली का शिकार हो गया?

सविता : अरविन्द!

लक्ष्मी : (काँपकर) क्या·····क्या अरविन्द मर गया?

तारा : हाँ, गोली उसके सीने से पार हो गयी। वह मर गया।

(सब हक्के-बक्के रह जाते हैं। पागल-से देखते हैं। लक्ष्मीचन्द्र सोफे पर गिर पड़ते हैं। विजय दोनों हाथों में मुँह ढक लेते हैं। अन्नपूर्णा पागल-सी तारा को सँभालती है।)

अन्नपूर्णा : अरे, मेरे अरविन्द को किसने मार डाला, नाश हो जाय इस पुलिस का! बिना गोली कोई बात नहीं करता। अरे विजय, यह तुमने क्या किया?

विजय : (पागल-सा) ओह! यह क्या हुआ? अरविन्द वहाँ क्यों गया था?

(टेलीफोन की घण्टी बजती है, सविता उठती है।)

सविता : हलो, जी हाँ हैं। (विजय से) कप्तान साहब, आपका फोन है।

(चोंगा पटककर तेजी से किसी की ओर देखे बिना भागती है।)

विजय : (फोन लेकर) जी हाँ, क्या·····भीड़ बेकाबू हो गयी है, टेलीगंज में·····हाँ, अभी आया।

सुभाष : मैं भी जाता हूँ कहीं कुछ हो न जाय। (जाता है)

शरत : मैं भी चलता हूँ। (मुड़ता है, पर जब तारा बोलती है तो ठिठक जाता है।)

अन्नपूर्णा : तारा भाभी भी अन्दर चलें। (उठाती है।)

तारा : (पूर्ववत्) सब जाओ, पर अरविन्द क्या आयेगा? उसने किसी का क्या बिगाड़ा था। वह चिल्लाया— मैं दंगा नहीं करता, मैं बाजार जाता हूँ·····(विक्षुब्ध हो जाती है।)

लक्ष्मी : पर मदान्ध पुलिसवालों ने एक न सुनी। पुलिस को अपनी जान इतनी प्यारी है कि एक दस वर्ष के बच्चे से भी उन्हें डर लगा·····

सविता : (जाते-जाते) किसी ने उसकी आवाज नहीं सुनी। किसी ने उसकी ओर नहीं देखा।

लक्ष्मी : सब अन्धे हैं। ताकत के अन्धे! जो सामने आता है उसे कुचल देना चाहते हैं! चाहे वह धूल हो, चाहे पत्थर·····

शरत : (जाता हुआ व्यथा से) ओह, यह क्या हो रहा है? यह क्या हुआ?

लक्ष्मी : वही हुआ जो विजय चाहता था, जो तुम चाहते थे।

शरत : (एकदम) दादा जी·····

लक्ष्मी : (पूर्ववत्) तुमने मेरा घर बरबाद कर दिया। मेरे बच्चे को मार डाला। तुम सब हत्यारे हो·····।

शरत : दादा जी, ओह मैं क्या कहूँ·····

लक्ष्मी : (पूर्ववत्) जब पैसे की जरूरत होती है तो मेरे पास भागे आते हो। टैक्स माँगते हो, दान माँगते हो, व्यापार में पैसा लगाने को कहते हो और·····मुझी पर गोली चलाते हो·····

शरत : दादा जी, गोली उन्होंने जान-बूझकर नहीं चलायी। अरविन्द तो बच्चा था। उससे किसी का क्या वैर था?

लक्ष्मी : वैर क्यों नहीं था। वह जनता में था तुम हो जनता के शत्रु! मैं अभी जाकर विजय से पूछता हूँ·····(जाने को उठते हैं।)

(सविता आती है)

सविता : अभी रुकिये, दादा जी! भाभी जी को दौरा पड़ गया है·····(टेलीफोन की घण्टी बजती है, उठाती हैं) हलो, जी हाँ (शरत से) आपका फोन है।

शरत : (फोन लेकर) हलो, जी हाँ। क्या·····मन्त्रिमण्डल की बैठक हो रही है, मुझे भी बुलाया है। मैं अभी आया। (शरत फोन रखकर जाने को मुड़ते हैं। तभी सुभाष का तेजी से प्रवेश)

सुभाष : भाई साहब! आपको अभी चलना है।

शरत : मैं चल ही रहा हूँ। मन्त्रिमण्डल की बैठक हो रही है।

सुभाष : वहाँ नहीं आपको मेरे साथ चलना है। आपको जनता के पास चलना है। जनता में बड़ी उत्तेजना है। विद्यार्थी पीछे रह गये, दूसरे समाजद्रोही तत्त्व आगे आ गये हैं और विजय ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया है।

शरत : (पागल-सा) विजय ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया?

सुभाष : जी हाँ।

शरत : वह कहाँ है?

सुभाष : भीड़ के सामने!

शरत : वह भीड़ के सामने है। (एकदम दृढ़ होकर) चलो, सुभाष, मैं देखता हूँ जनता क्या चाहती है। (दोनों जाते हैं)

सविता : मैं भी चलती हूँ।

लक्ष्मी : मैं भी चलता हूँ।

सविता : नहीं-नहीं, आप ठहरें। आप भाभी जी को सँभालें। (जाती हैं।)

(तभी अन्नपूर्णा आती है।)

अन्नपूर्णा : क्या हुआ दादा जी, सब कहाँ गये?

लक्ष्मी : सब गये। सुभाष आया था। कहता था, विजय ने गोली चलाने से इन्कार कर दिया। अब·····अब तो इन्कार करना ही था। वे तो मेरे बच्चे को मारना चाहते थे·····

अन्नपूर्णा : नहीं-नहीं, दादा जी यह बात नहीं थी।

लक्ष्मी : यह बात कैसे नहीं थी? मैं उन सबको जानता हूँ। वे मेरे पैसे से आगे बढ़े और मुझी को बरबाद कर दिया। मैं पूछता हूँ, उन्होंने पहले ही गोली चलाने से इन्कार क्यों न किया। क्योंकि·····क्योंकि·····

अन्नपूर्णा : नहीं दादा जी! नहीं·····

लक्ष्मी : (आवेश में) ये मेरे छोटे भाई·····एक ने मुझे स्वार्थी और देशद्रोही कहा, दूसरे ने मेरे बेटे को मार डाला। मेरे मासूम बच्चे को मार डाला, मार डाला·····(रोकर गिर पड़ते हैं।)

अन्नपूर्णा : (सँभालती हुई) दादा जी, दादा जी! ओह, यह एक ही घर में क्या होने लगा। भाई-भाई में मनमुटाव! (एकदम) नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। दादा जी, आप गलत समझ रहे हैं·····

लक्ष्मी : (आँखें खोलकर) मैं गलत समझ रहा हूँ·····मैं गलत समझ रहा हूँ। अरविन्द मेरे बच्चे! तू चला गया, मैं तुझसे दो बातें भी न कर सका, तू तो भीड़ में भी नहीं था! अरविन्द·····

(तारा का प्रवेश)

तारा : अरविन्द! क्या अरविन्द आया है? कहाँ है?

(अन्नपूर्णा तारा को पकड़ती है।)

अन्नपूर्णा : भाभी जी, भाभी जी, आप क्यों उठ आयीं? हम अभी अस्पताल चलते हैं! आप अपने को सँभालिये।

(अन्नपूर्णा तारा को अन्दर ले जाती है। लक्ष्मीचन्द्र भी जाते हैं तभी अस्त-व्यस्त परेशान सविता का प्रवेश।)

सविता : (बोलती जाती है) अद्‌भुत दृश्य था, अपार भीड़ थी, उनके आगे खड़े थे कप्तान भैया, दूर से देख सकी। किसी ने पास जाने ही नहीं दिया। एक रेला आया और मैं पीछे आ पड़ी।

(अन्नपूर्णा आती है।)

अन्नपूर्णा : तुम आ गयी। वे लोग कहाँ हैं? सुभाष कहाँ है?

सविता : कुछ पता नहीं, मुझे किसी का कुछ पता नहीं। मैं आगे नहीं बढ़ सकी और वे दोनों आगे बढ़ते चले गये। एक बार भीड़ के बीच में सबको देखा, फिर उस ज्वार-भाटा में सब-कुछ छिप गया। (टेलीफोन की घण्टी बजती है, उठाती है।) हलो, जी वे तो गये। जी हाँ, भीड़ में जाते मैंने देखा था। जी हाँ। (फोन रखती है।) मन्त्रिमण्डल की बैठक में शरत भाई साहब का इन्तजार हो रहा है। वे अभी तक पहुँचे ही नहीं? मैं कहती हूँ ये लोग मन्त्रिमण्डल की बैठक क्यों कर रहे हैं। जो लोग विदेशियों की गोलियों से नहीं डरे, वे अपने ही बच्चे और भाइयों से क्यों डरते हैं? जनता में क्यों नहीं आते?

अन्नपूर्णा : क्योंकि शासन भीड़ में आकर नहीं चलाया जाता। आखिर जनतन्त्र भी तो कानून का राज है।

सविता : है, पर·····(एकदम) नहीं, अब बहस करने का समय नहीं है। सोचने और काम करने का समय है। बेचारा अरविन्द! उसकी मौत क्यों हुई? जन-राज्य में एक निर्दोष, निरीह बालक की हत्या क्यों हुई? (टेलीफोन की घण्टी फिर बजती है। उठाकर) हलो, क्यों·····हाँ, हाँ कप्तान साहब तो कभी के चले गये। क्या, उनका पता नहीं मिल रहा। नहीं वे·····वे भीड़ के सामने थे। मैंने देखा था। जी हाँ, मैंने देखा था। उधर का क्या हाल है? ठीक नहीं। उनके हुक्म के बिना कुछ नहीं कर सकते·····हाँ, हाँ, आये तो कह दूँगी·····क्या·····कोई आया है। हाँ, हाँ पूछिए····· हलो·····हलो·····हलो·····(फोन रखकर) कनेक्शन काट दिया·····अवश्य कोई बात है! (जाने को मुड़ती है।) मैं जाती हूँ·····

अन्नपूर्णा : सविता! तुम न जाओ! ठहरो तो, सविता·····(सविता नहीं रुकती) गयी।

लक्ष्मी : (आकर) कौन गयी? क्या बात है?

अन्नपूर्णा : जरूर कोई बात है। सविता टेलीफोन कर रही थी, पता नहीं किसी ने क्या कहा, भागी चली गयी।

लक्ष्मी : तो मैं भी जाता हूँ। अरविन्द को भी लाना है। (गला रुँध जाता है, तेजी से जाते हैं।)

अन्नपूर्णा : दादा जी! अभी रुकिये। किसी को आ जाने दीजिए।

लक्ष्मी : घबराओ नहीं, मैं बच्चा नहीं हूँ (जाते हैं।)

(दूसरे द्वार से विजय की पत्नी उमा, आयु 42 वर्ष, पागलों की तरह आती है।)

उमा : जीजी, सब कहाँ हैं?

अन्नपूर्णा : मुझे पता नहीं। यहाँ से तो कभी के गये। क्या तुझे सविता नहीं मिली।

उमा : मुझे कोई नहीं मिला। अरविन्द की खबर सुनकर भागी आ रही हूँ, जीजी·····जीजी, मैं भाभी जी को कैसे मुँह दिखाऊँगी? मैं मर क्यों न गयी?

अन्नपूर्णा : (शून्यवत्) न जाने क्या होनेवाला है। एक ही घर के लोग एक-दूसरे को खा रहे हैं। (बाहर भीड़ का शोर) यह क्या? लोग इधर आ रहे हैं।

उमा : (द्वार पर जाकर देखती है, चीख पड़ती है। जीजी·····ई·····।

अन्नपूर्णा : क्या हुआ, उमा? (उठकर तेजी से आगे बढ़ती है।)

(तभी घायल शरत वहाँ आते हैं। मुख पर घाव है। एक हाथ बँधा है।)

अन्नपूर्णा : (काँपकर) आप! यह क्या हुआ?

शरत : वही जो होना चाहिए था। विजय भीड़ में कुचला गया, पर उसने गोली नहीं चलायी।

उमा : कुचले गये, कौन?

शरत : विजय कुचला गया। चला गया।

उमा : (चीखकर) भाई साहब, वे कहाँ हैं? (भागती है।)

अन्नपूर्णा : (शरत से) यह तुम क्या कह रहे हो?

शरत : भीड़ सन्तुलन खो बैठी थी। विवेक खो बैठी थी। वह चिल्लाती रही—'अरविन्द कहाँ है? अरविन्द को लौटाओ।' और विजय भीड़ के सामने अड़ा रहा। चिल्लाता रहा—'मुझसे अरविन्द का बदला लो। मैंने अरविन्द को मारा है। तुम मुझे मार डालो!'

उमा : और भीड़ ने उन्हें मार डाला।

शरत : पता नहीं किसने मार डाला—उनके गिरते ही भीड़ पर जैसे अंकुश लग गया, पर·····पर·····पर जब वहाँ शान्ति हुई तो विजय और सुभाष दोनों कुचले हुए पड़े थे।

उमा : सुभाष भी·····

अन्नपूर्णा : सुभाष भी कुचला गया। हाय·····

शरत : हाँ, सुभाष भी कुचला गया। लेकिन खबरदार, जो उनके लिए रोये। रोने से उन्हें दुःख होगा। उन्होंने प्राण दे दिये, पर शासन और जनता का सन्तुलन ठीक कर दिया। वे शहीद हो गये, पर दूसरों को बचा गये। नगर में अब बिल्कुल शान्ति है। सब मौन सगर्व बलिदानों की चर्चा कर रहे हैं। सब शोक-सन्तप्त हैं। (बाहर देखकर) लो, वे आ गये। रोना मत-रोना मत (आगे बढ़कर) हाँ वहीं लिटा दो। (तभी लक्ष्मीचन्द्र और सविता के साथ पुलिस तथा दूसरे अधिकारियों का प्रवेश)। धीरे-धीरे वे विजय, सुभाष और अरविन्द की लाशें बराबर के कमरे में लाकर रखते हैं। एक भयंकर सन्नाटा छाया रहता है। सविता का मुख पत्थर की तरह कठोर है। लक्ष्मीचन्द्र तूफान की तरह काँप रहे हैं। शरत दृढ़ता से प्रबन्ध में लगे हैं। उमा तेजी से बढ़ती है। बराबर के कमरे में झाँककर जोर की चीख मारती है।)

उमा : माँ जी-ई यह क्या हुआ?

(तारा अन्दर से आती है।)

तारा : कैसा शोर है, अन्नपूर्णा? अरविन्द आ गया? कहाँ है!

शरत : भाभी, यह देखो, कमरे में तीनों लेटे हैं। कभी नहीं उठेंगे। ये अरविन्द और सुभाष हैं—यह जनता की क्षति है और इधर यह विजय है—यह सरकार की क्षति है।

अन्नपूर्णा : (रोकर) यह तुम कैसी बावलों की-सी बातें करते हो। यह सब मेरे घर की क्षति है।

सविता : (उसी तरह पत्थरवत्) नहीं, जीजी! यह उनकी नहीं, सारे देश की क्षति है, देश क्या हमसे और हम क्या देश से अलग हैं।

शरत : तुमने ठीक कहा, सविता। यह हमारे देश की क्षति है। जनतन्त्र में सरकार और जनता के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं होती।

(पर्दा गिरता है)

अभ्यास प्रश्न

● समीक्षात्मक प्रश्न

1. 'सीमा-रेखा' एकांकी का कथा-सार (सारांश) अपने शब्दों में लिखिए।

अथवा

'सीमा-रेखा' एकांकी का कथानक या कथावस्तु लिखिए।

2. 'सीमा-रेखा' एकांकी के स्त्री पात्रों में कौन सर्वोत्कृष्ट है, उसका चरित्र-चित्रण कीजिए।

अथवा

'सीमा-रेखा' एकांकी के आधार पर सविता के चरित्र की विशेषताएँ लिखिए।

3. 'सीमा-रेखा' एकांकी के आधार पर शरतचन्द्र अथवा सुभाष दोनों में से किसी एक के चरित्र पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
4. कथा-संगठन के विकास की दृष्टि से 'सीमा-रेखा' एकांकी की कथावस्तु की समीक्षा कीजिए।
5. 'सीमा-रेखा' एकांकी के आधार पर शरतचन्द्र और सुभाष के चरित्रों की तुलना कीजिए।
6. 'सीमा-रेखा' एकांकी का परिचय देते हुए एकांकीकार के मूल उद्देश्य को प्रकट कीजिए।
7. विष्णु प्रभाकर के जीवन-वृत्त एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
8. ''जनतन्त्र में सरकार और जनता के बीच कोई विभाजक रेखा नहीं होती।'' इस कथन के आधार पर 'सीमा-रेखा' एकांकी की समीक्षा कीजिए।
9. विष्णु प्रभाकर के साहित्यिक परिचय पर प्रकाश डालिए।

● लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'सीमा-रेखा' एकांकी के शीर्षक की सार्थकता बताइये।
2. अरविन्द, सुभाष और विजय की मृत्यु को अन्नपूर्णा, सविता और शरत किस रूप में देखते हैं?
3. 'सीमा-रेखा' एकांकी में एक ही परिवार के पात्र किस उद्देश्य से रखे गये हैं?
4. एकांकीकार ने सुभाषचन्द्र का बलिदान किस उद्देश्य से कराया है? टिप्पणी लिखिए।
5. 'सीमा-रेखा' एकांकी में भारतीय परिवार के वातावरण की झलक कहाँ-कहाँ एवं किस रूप में मिलती है?
6. आज के राजनीतिज्ञों के लिए एकांकीकार का क्या सन्देश है?
7. सीमा-रेखा में कौन-सी सीमा-रेखा टूटती हुई दिखायी देती है?
8. ''आज के भारतीय परिवेश में विद्यार्थी कानून की चिन्ता नहीं करते हैं।'' इस कथन में निहित व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।
9. 'सीमा-रेखा' एकांकी से दस सुन्दर वाक्य लिखिए।
10. 'भीड़ को कानून अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए।' यह किसका कथन है? इस कथन पर एक अनुच्छेद अपनी भाषा में लिखिए।

● वस्तुनिष्ठ प्रश्न

सही उत्तर के सम्मुख सही (✓) का चिह्न लगाइये—

1. इस एकांकी का शीर्षक सीमा-रेखा है, क्योंकि—

(अ) गोलीकाण्ड और हत्या, अधिकार और अराजकता की सीमा-रेखा है। ( )

(ब) जनतन्त्र में जनता और सरकार में कोई विभाजक रेखा नहीं है। ( )

(स) चारों भाइयों के स्वार्थ की अलग-अलग सीमा-रेखा है। ( )

2. विजय अनियन्त्रित भीड़ पर गोली नहीं चलाता, क्योंकि—

(अ) वह अरविन्द की मृत्यु का प्रायश्चित्त करना चाहता था। ( )

(ब) भीड़ पर गोली चलाने का आदेश उसे सरकार से प्राप्त नहीं था। ( )

(स) शरतचन्द्र ने उसे गोली चलाने से मना कर दिया था। ( )

3. इस एकांकी में उठायी गयी समस्या सम्बन्धित है—

(अ) राष्ट्र से ( )

(ब) सरकार से ( )

(स) परिवार से ( )

4. अन्नपूर्णा पुलिस द्वारा गोली चलाने का समर्थन करती है, क्योंकि—

(अ) वह अराजकता को पसन्द नहीं करती। ( )

(ब) पुलिस कप्तान विजय उसका देवर है। ( )

(स) वह व्यापारी वर्ग से सम्बन्धित है, जिसकी रक्षा पुलिस से ही होती है। ( )

● आन्तरिक मूल्यांकन

1. भीड़ को कानून अपने हाथ में नहीं लेना चाहिए, इससे आप कहाँ तक सहमत हैं? अपने विचार प्रकट कीजिए।
2. विष्णु प्रभाकर की रचनाओं की एक सूची बनाइए।

❖